मार्कस ऑरेलियस
द्वारा

आत्मचिन्तन

अनुवादक
श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

आत्मचिन्तन

मार्कस ऑरेलियस

सुप्रसिद्ध रोमन तत्त्वज्ञानी सम्राट्
मार्कस ऑरेलियस द्वारा

आत्मचिन्तन

अनुवादक
श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य
तथा
श्रीमती लक्ष्मी देवदास गांधी

हिन्दुस्तान टाइम्स
नई दिल्ली

सादी जिल्द	:	एक रुपया
कपड़े की जिल्द	:	दो रुपया

प्रकाशक की ओर से

सन् १९४६ में रोमन तत्त्ववेत्ता राजर्षि मार्कस ऑरेलियस के आत्मचिन्तन का श्री राजाजी द्वारा तमिल भाषा में किया गया अनुवाद प्रकाशित हुआ था। उस तमिल पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद राजाजी की पुत्री सौभाग्यवती लक्ष्मी देवदास गांधी ने किया है।

हिन्दी संस्करण की प्रस्तावना

जब मनुष्य को दुःख और कष्ट आ घेरते हैं, वह व्याकुल हो उठता है। मन को स्थिर रखने के लिए ज्ञान आवश्यक है। किन्तु थोड़ा ज्ञान कभी-कभी शंका या सन्देह के कारण निरर्थक बन जाता है। ज्ञान और शांति का मार्ग दिखानेवाले ग्रंथों में रोम के सम्राट् मार्कस ऑरेलियस की टिप्पणियों का यह संग्रह ऊंचा स्थान रखता है। जीवन में महत्त्व की चीजें क्या हैं, कौनसी वस्तुएं तिरस्करणीय हैं, संकटों का किस प्रकार से सामना किया जा सकता है, यह हमारे अपने धार्मिक ग्रन्थों में खूबी से समझाया गया है। किन्तु दूसरे देशों के सन्तों और महापुरुषों के ग्रंथों से भी, जैसे वे हमारे ग्रन्थों से अवश्य लाभ उठाते हैं, हमें लाभ उठाना चाहिए। बार-बार पढ़ते रहने के कारण कभी-कभी हम अपने ग्रंथों पर से एकाग्रता खो बैठते हैं और निरे शब्दों को ही रटते रहते हैं। ऐसी अवस्था में अन्य मुनियों की वाणी हमें जागृत करती है। मानव-जाति किसी एक राष्ट्र में नहीं बल्कि समस्त दुनिया में फैली हुई है।

करीब बीस वर्ष पहले इस पुस्तक को मैंने तामिल में लिखा था और उससे मुझे उस समय आश्चर्य-जनक शांति प्राप्त हुई थी। अब मेरे अनुरोध से मेरी

प्रिय पुत्री लक्ष्मी ने इस तमिल पुस्तक का राष्ट्रभाषा में रूपान्तर किया है। इससे मुझे अयन्त हर्ष हो रहा है। ऐसी सेवा से पिता अभिमान का अनुभव करे या पुत्री को आशीर्वाद दे, दोनों एक ही बात हैं।

इस पुस्तक को मीमांसा-शास्त्र न समझा जाय। दिन-प्रति-दिन के विचारों की ये टिप्पणियां इस ख़याल से नहीं लिखी गईं कि किसी दूसरे के लिए उपदेशरूप हों या अपने विचारों से दूसरों को क़ायल किया जाय। इसको कहीं से खोलकर पढ़ लीजिए। प्रलोभन, ग्लानि और शोक की अवस्था में मन को शांति प्रदान करनेवाले विचार इसमें मिलेंगे। कई बातें इसमें बार-बार दोहराई भी गई हैं। लेकिन यह निबंध नहीं है, इसलिए इसपर पुनरोक्ति का दोष लागू नहीं होता।

भारतवासियों में ज्ञान और शांति की वृद्धि हो तथा सबके हृदय पवित्र बनें, यही मेरी शुभ कामना है।

नई दिल्ली, अगस्त १९४९

भूमिका

राजा जनक के बाद इस संसार में दो प्रसिद्ध राजर्षि हो चुके हैं—एक तो भारतवर्ष के सम्राट् अशोक और दूसरे रोम-साम्राज्य के मार्कस ऑरेलियस। मार्कस ने सम्राट् अशोक के प्रायः चार सौ वर्ष बाद ईसवी सन् १६१ से अपने देहान्त के वर्ष सन् १८० तक राज-शासन किया।

मार्कस के आत्मचिन्तन की टिप्पणियां दूसरों के लिए नहीं लिखी गई थीं। उनके देहावसान के कई शताब्दियों बाद उनके लेखों की पांडुलिपि मिली, जिसे पुस्तक रूप में प्रकाशित किया गया। ये टिप्पणियां एक ही समय की लिखी हुई नहीं हैं। अपनी ही व्यथित एवं चिन्तित आत्मा को बार-बार समझाने तथा सान्त्वना देने के रूप में ये टिप्पणियां लिखी गई हैं। इनमें अपनेआपको तुम करके संबोधित किया गया है। किसी अन्य व्यक्ति को उपदेश न देकर मार्कस आरेलियस अपनी ही आत्मा से आक्षेप और समाधान करते गये हैं। किन्तु अपने लिए लिखी गई इन टिप्पणियों का संग्रह सदा के लिए पढ़ने योग्य उत्तम वैराग्य-दीपक है। हजारों मनुष्यों को इस पुस्तक ने शान्ति एवं शक्ति प्रदान की है। जान स्टुअर्ट मिल और जान मोर्ले ने, जो इंग्लैण्ड के महा-

प्रिय पुत्री लक्ष्मी ने इस तमिल पुस्तक का राष्ट्रभाषा में रूपान्तर किया है। इससे मुझे अयन्त हर्ष हो रहा है। ऐसी सेवा से पिता अभिमान का अनुभव करे या पुत्री को आशीर्वाद दे, दोनों एक ही बात हैं।

इस पुस्तक को मीमांसा-शास्त्र न समझा जाय। दिन-प्रति-दिन के विचारों की ये टिप्पणियां इस खयाल से नहीं लिखी गईं कि किसी दूसरे के लिए उपदेशरूप हों या अपने विचारों से दूसरों को क़ायल किया जाय। इसको कहीं से खोलकर पढ़ लीजिए। प्रलोभन, ग्लानि और शोक की अवस्था में मन को शांति प्रदान करनेवाले विचार इसमें मिलेंगे। कई बातें इसमें बार-बार दोहराई भी गई हैं। लेकिन यह निबंध नहीं है, इसलिए इसपर पुनरोक्ति का दोष लागू नहीं होता।

भारतवासियों में ज्ञान और शांति की वृद्धि हो तथा सबके हृदय पवित्र बनें, यही मेरी शुभ कामना है।

नई दिल्ली, अगस्त १९४९

भूमिका

राजा जनक के बाद इस संसार में दो प्रसिद्ध राजर्षि हो चुके हैं—एक तो भारतवर्ष के सम्राट् अशोक और दूसरे रोम-साम्राज्य के मार्कस ऑरेलियस। मार्कस ने सम्राट् अशोक के प्रायः चार सौ वर्ष बाद ईसवी सन् १६१ से अपने देहान्त के वर्ष सन् १८० तक राज-शासन किया।

मार्कस के आत्मचिन्तन की टिप्पणियां दूसरों के लिए नहीं लिखी गई थीं। उनके देहावसान के कई शताब्दियों बाद उनके लेखों की पांडुलिपि मिली, जिसे पुस्तक रूप में प्रकाशित किया गया। ये टिप्पणियां एक ही समय की लिखी हुई नहीं हैं। अपनी ही व्यथित एवं चिन्तित आत्मा को बार-बार समझाने तथा सान्त्वना देने के रूप में ये टिप्पणियां लिखी गई हैं। इनमें अपनेआपको तुम करके संबोधित किया गया है। किसी अन्य व्यक्ति को उपदेश न देकर मार्कस ऑरेलियस अपनी ही आत्मा से आक्षेप और समाधान करते गये हैं। किन्तु अपने लिए लिखी गई इन टिप्पणियों का संग्रह सदा के लिए पढ़ने योग्य उत्तम वैराग्य-दीपक है। हज़ारों मनुष्यों को इस पुस्तक ने शान्ति एवं शक्ति प्रदान की है। जान स्टुअर्ट मिल और जान मोर्ले ने, जो इंग्लैण्ड के महा-

पुरुष माने जाते हैं, कहा है कि मार्कस ऑरेलियस की इस पुस्तक से कई ने उद्धार पाया है। इस आत्मचिन्तन से हमें राग-द्वेष-रहित सच्ची तपश्चर्या का तथा विवेकयुक्त गार्हस्थ्य-जीवन का उपदेश मिलता है। सुख और दुःख मनुष्य के अपने ही हाथों में हैं। सुख-दुःख की अवस्था आन्तरिक है, बाह्य नहीं। इसी को मार्कस ने कई प्रकार से समझाया है। सारा जगत् एक प्राणवान व्यक्ति है, जिसके तुम अंगमात्र हो। जगत् का हितचिन्तन तुम्हारा स्वाभाविक धर्म है। विवेकपूर्वक आचरण करना ही तुम्हारा धर्म है और उसीमें तुम्हारा कल्याण है। व्यक्ति के लिए कोई घटना दुःखरूप होने पर भी समष्टि के लिए लाभदायक ही होती है। इसलिए चाहे कैसे ही कष्ट का सामना करना पड़े, चित्त को स्थिर रखना चाहिए। इन बातों को विस्तार से समझाकर मार्कस अपने मन को धीरज और समाधान देते हैं। मन की अविचल अवस्था को ही उन्होंने ईश्वरभक्ति और आनन्द कहा है। साधारण मनुष्य इस आनन्द को साहस के साथ कैसे प्राप्त करे, इसका मार्ग राजयोगी मार्कस ने दिखाया है।

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

आत्म-चिन्तन

सवेरे उठते ही इस प्रकार मनन करो :

१. आज शायद मुझे किसी उपद्रवी का सामना करना पड़े। घोर हिंसा शायद मेरे दृष्टिगोचर हो। कृतघ्न, विश्वासघाती, ईर्ष्यालु, शीलहीन मनुष्यों से शायद मिलना पड़े। ऐसे लोगों के समस्त अपराधों का कारण उनका अज्ञान है। भले और बुरे को पहचानने की शक्ति उनमें नहीं है। किन्तु मैं तो जानता हूं कि क्या चीज़ अच्छी है और क्या बुरी। मैं अच्छाई में सौन्दर्य और बुराई में विरूपता देखता हूं। अगर मेरे साथ कोई दुर्व्यवहार करे, तो भी मैं जानता हूं कि वह आदमी मेरा कोई आप्तजन है। शायद शारीरिक सम्बन्ध किसी प्रकार का न हो तो भी आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाय तो वह मेरा भाई-बन्धु ही है। परमात्मा का ही अंश हम दोनों के अन्तर में विद्यमान है। इस सत्य को हम भलीभांति समझ लें तो कोई हमें फिर क्या हानि पहुंचा सकता है ? मेरे सिवाय मेरा कौन बिगाड़ कर सकता है ? जब दुर्व्यवहार करनेवाला

मेरा छोटा भाई ही है, तो भला मैं उस पर रोष या द्वेष कैसे करूं ?

दुनिया में हम सब मिलजुलकर रहने के लिए ही पैदा हुए हैं। जैसे हाथ और पैर, आंखों की दोनों पलकें और ऊपर-नीचे के दांत एक-दूसरे को पूरा सहयोग देते हैं, उसी तरह मनुष्य को भी दूसरे के कार्यों में सहयोग देना चाहिए। इस स्वकर्त्तव्य को भूलना और इसके विरुद्ध चलना अस्वाभाविक है। ऊपर का व्यवहार ठीक होते हुए भी अगर हम मन में क्रोध और द्वेष रखें तो हमारा यह आचरण प्रकृतिविरुद्ध होगा। बाहरी ढोंग प्रकृति के नियमों के अनुसार सहयोग नहीं दे सकता।

२. मनुष्य जिसे 'मैं' करके पुकारता है वह शरीर असल में अस्थि, मांस, मन इत्यादि का एक सम्मिश्रण है। किसी भी क्षण शरीर का अन्त आ सकता है। शरीर को कभी महत्त्व न दो। अस्थि-पंजर का यह शरीर नश्वर है। हम जो सांस लेते हैं वह भी एक ऐसी ही अनित्य वस्तु है जो प्रति क्षण अन्दर जाते ही बाहर आती है। शरीर का संचालक आत्मा शरीर और प्राण से पृथक् रहता है। ज़रा सोचो, तुम तो अब बूढ़े हो गये हो, तुम्हारा मन अभीतक पराधीन क्यों है ? समुद्र की लहरों पर इधर-उधर उछलते रहते तिनके की तरह तुम्हारा मन

क्यों अस्थिर है ? दुनियाके और लोगों के वारे में, जो तुम्हारे वन्धु हैं, जरा भी नहीं सोचते, और अपनी ही स्थिति पर चिन्ता-निमग्न हो ! भविष्य के वारे में चिन्ता न करो ।

३. जगत् में जो कुछ होता है वह अच्छे उद्देश्य से ही होता है । अणुओं का एकत्र तथा पृथक् होना ही समस्त वस्तुओं के जन्म का कारण है । इस संसार की रचना के लिए भी शरीर का जन्म और मरण अनिवार्य है । आकस्मिक घटनाएं भी इसी कारण से कभी-कभी आवश्यक हो जाती हैं । सव कुछ ईश्वराधीन है । एक अणु भी उसके विरुद्ध नहीं चल सकता । तुम इस संसार का एक अंशमात्र हो । सांसारिक नीति को निभाने के लिए स्वाभाविक रीति से किसी घटना को दुःखप्रद न समझो । इस संसार में जितनी भी वस्तुएं हैं सभी अपना-अपना समय आने पर परिवर्त्तित होती हैं और ह्रास पाती हैं । प्रकृति का यह नियम है । यही जगत् का प्राण है । इस सत्य को समझकर तुम्हें शान्ति पानी चाहिए । इस तत्त्व को समझकर अपना जीवन चलाओ । पुस्तकों का वहुत पढ़ना छोड़ो । वह अन्त समय काम नहीं देगा । पुस्तकों का ज्ञान मरण के समय तुम्हें सन्तोप या समाधान नहीं दे सकता । अपने जीवन में तुमने जो कुछ सुख पाया है उसके

लिए ईश्वर को धन्यवाद दो और जो दुःख पाया है उसे प्रकृति की अनिवार्य नीति समझकर शान्त चित्त से प्राण छोड़ने को तैयार रहो।

४. तुमने स्थितप्रज्ञ हुए विना बहुत-बहुत दिन बिता दिए। काफ़ी समय व्यर्थ जाने दिया। सोचो तो! अब विलंब मत करो। अभी भी समय है। सत्य को पहचान लो और शान्त समाहित अवस्था प्राप्त करो। यह संसार, जिसके तुम एक अंग हो, किस प्रकार का है? सारे ब्रह्मांड को चलानेवाली परा शक्ति कौन सी है? तुम उस शक्तिरूपी अग्नि से उड़ी हुई एक चिनगारी हो। तुम्हारे लिए निश्चित समय बहुत अल्प है। अतः ज्ञान के प्रकाश को शीघ्र प्रवेश करने दो और अंधकार-आवरण को, जो तुम्हारी बुद्धि पर छाया हुआ है, हटा लो। आयु की अवधि को कोई नहीं जानता। जल्दी नहीं करोगे तो हो सकता है कि बाद में अवकाश ही न मिलने पाये। तुमने एक अच्छे कुल में मनुष्य का जन्म पाया है। तुम्हारा जो स्वाभाविक धर्म है उसे बिना किसी आडंबर के, उदार हृदय से, पालन करो। जीव-दया, स्वावलंबन, न्याय इन तीनों वस्तुओं को कभी भूलना नहीं। इसी से शान्ति पाओगे। कोई भी काम करो, लगन के साथ करो, और यह सोचकर करो कि फिर उसे करने का मौका शायद ही कभी मिले। विवेक को

बिगाड़नेवाले राग-द्वेषादि को छोड़ो। अहंकार, दंभ, ईश्वर के प्रति असंतोष—इन दुर्भावनाओं को मन में स्थान न देकर अपने कर्त्तव्यों का पालन करो। तुम्हें मालूम हो जायगा कि धर्म से विचलित न होकर शान्त चित्त से जीवन व्यतीत करना बहुत कठिन नहीं है।

अरे भाई, क्यों विनाश की ओर जा रहे हो? तुम्हारी आत्मा को सुधारने के लिए तुम्हें दी हुई अवधि समाप्त हो जायगी, तब क्या करोगे? ज़रा सोचो तो! तुम बूढ़े होते चले जा रहे हो। अभीतक ज्ञान प्राप्त नहीं किया। अपनी आत्मा की चिन्ता करो। दूसरों के भरोसे जीना चाह रहे हो, हे मूर्ख मन!

बाह्य वस्तुओं से तुम क्यों व्यग्र रहते हो? किसी अच्छे कार्य में मन लगाकर अपने दुःख को भूलने का प्रयत्न करो। असली चीज़ को न पहचानकर, नाना प्रकार के कार्यों में लगकर, जीवन यों ही समाप्त कर देना मूर्खता है। अपने आचरण और अपने विचार को कर्त्तव्य-धर्म से नियन्त्रित करो। यही शान्ति का मार्ग है।

दूसरों के मन में क्या विचार आ रहे हैं, वे क्या सोचते हैं और क्या नहीं सोचते आदि विचारों को छोड़ो। उससे दुःख के सिवाय और कुछ नहीं

मिलेगा। अपने हृदय की जांच न कर दूसरों के मन की अवस्था की चिन्ता करने में कोई लाभ नहीं।

क्रोध से किये जानेवाले अपराध से लोभ से किये जानेवाले अपराध में अधिक पाप है। क्रोधावस्था में मनुष्य स्वयं कुछ दुःख पाता है, किन्तु अन्य अवस्था में जब वह कोई अपराध करता है तो साथ-साथ वह स्वयं किसी स्वाभाविक दुःख का अनुभव नहीं करता।

५. तुम्हें सदा एक वात का स्मरण रहे। वहुरूपी होने पर भी वास्तव में संसार एक ही है। व्यक्ति और समष्टि के लक्षण तथा दोनों के वीच जो सम्वन्ध है उसे जानने और समझने का प्रयत्न करो। उस सम्वन्ध को विगाड़ना नहीं चाहिए। समष्टि के स्वाभाविक ढंग के अनुसार तुम्हारा भी व्यवहार रहना चाहिए। तुम उसी के एक भाग हो।

६. किसी क्षण भी तुम इस दुनिया से वुला लिये जाओगे। वात करते, काम करते, कोई विचार करते इस वात का ध्यान रखो और मौका आने पर प्राण छोड़ने को तैयार रहो।

मरण में दुःख ही क्या है? मनुष्यों से विछुड़कर देवताओं के पास जाने में वुरा क्या है? देवता तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न देंगे। अगर उनके अस्तित्व में तुम्हें विश्वास न हो, यदि तुम

ईश्वर को नहीं मानते, तो मरण से भय ही क्यों ? मैं तो कहूंगा कि ईश्वर है। वही इस सारे ब्रह्माण्ड का त्राता है। मनुष्य को अपने-आपको विपत्तियों से वचाने के लिए आत्मरक्षा के तरह-तरह के उपाय मालूम हैं। वे भगवान के ही दिये हुए हैं। वास्तविक कष्टों से वचने के लिए मनुष्य के पास उपाय हैं। जो कष्ट अनिवार्य हैं वे वास्तविक कष्ट नहीं हैं। बाह्य वस्तुओं का प्रभाव आत्मा पर नही पड़ना चाहिए। जवतक आत्मा को हानि नहीं पहुंचती तवतक हानि वास्तव में हानि ही नहीं। यदि वह हानि सच्ची होती तो उससे वचने का उपाय भी जरूर रहता। ईश्वर मनुष्यों के कष्टों को समझता है, कष्टों से वचाता भी है।

इस दुनिया में सज्जन और दुर्जन दोनों को ही सुख और दुख भोगने पड़ते हैं। सज्जनों पर कम कष्ट पड़े और दुष्टों पर अधिक ऐसा देखने में नहीं आता। जिसे हम सुख-दुःख समझते हैं यदि वह वास्तव में सुख-दुःख है, तो ईश्वर ऐसा कभी न होने देता। हरएक मनुष्य का सुख और दुःख, भला और वुरा उसी के हाथों में है। आदर और अपमान, कष्ट और आराम, धन और दारिद्र्य लोगों के गुणों के अनुसार नहीं पाये जाते। यदि विचार-पूर्वक देखें तो मालूम होगा कि हम जिसे अच्छी

चीज या सुख समझते हैं वह ऐसा नहीं है और जिसे हम बुरी चीज या दुःख मानते हैं वह वास्तव में वैसा नहीं है। अमुक वस्तु बुरी है और अमुक अच्छी इसका निर्णय भली भांति सोचे विना नहीं कर लेना चाहिए।

७. बुद्धि से काम लो। संसार की समस्त वस्तुएं अति शीघ्र नष्ट हो जाती हैं। यह शरीर नश्वर है। बिखरकर पंचभूतों के साथ मिल जाता है और थोड़े ही समय में शरीर के जाते ही उस मनुष्य का स्मरण भी चला जाता है, जिसका वह शरीर था। इन वस्तुओं का क्या तत्त्व है?

किसी वस्तु में हमको सुख का भ्रम होता है और हम उसके मोह में फंस जाते हैं। कोई वस्तु हमें कष्टदायक दिखाई देती है, हम उसके पास जाने में हिचकते हैं। अन्य कोई वस्तु हमारे अन्दर अहंकार पैदा करती है। ये सब बातें अस्थिर और तुच्छ हैं। इनसे कोई लाभ नहीं। वास्तव में किस कार्य में श्रेय है, किस प्रकार के मनुष्यों के सम्पर्क से हमारा मान बढ़ता है, मरण वास्तव में क्या चीज़ है, इन बातों पर हम विचार करें। जगत् प्रकृति के स्वभावानुसार चलता है। प्रकृति की नीति से बच्चे डर सकते हैं, उससे बड़े क्यों घबराएं? मनुष्य का मरना केवल स्वभाविक ही

नहीं है, प्रत्युत् मरण से ही जीवन की उत्पत्ति है ।

जो विवेकवान है वह इन्हीं बातों का चिन्तन करता है । ईश्वर के निकट जाने का मार्ग कौन-सा है ? अपने हृदय का कौन सा अंश दैवी है, अर्थात् परमात्मा के निकट रहता है ?

८. नाना प्रकार के विषयों में, जिनसे सच्चा सुख कदापि मिलनेवाला नहीं, मन न लगाओ । दूसरों के मन में क्या है इसे जानने की उलझन में मत पड़ो । तुम तो अपनी ही अन्तरआत्मा को देखो । उसे पहचानने का प्रयत्न करो । अपनी आत्मा को किस तरह लाभ पहुचेगा, इसी का विचार करो । इसका ज्ञान न होने के कारण ही मनुष्य दुःखी रहता है । आत्मा का उद्धार अविवेक, दुःख तथा संशय को मन में स्थान न देने में ही है । भाग्यवश जो सुख प्राप्त हो जाता है उसे, तथा अनिवार्य रूप में जो दुःख भोगना पड़े उसे भी, समान रूप से ईश्वर का दिया हुआ वरदान समझकर विनयपूर्वक स्वीकार करो । तुम्हारे प्रति किये गये दूसरों के व्यवहारों से, चाहे वे अच्छे हों या बुरे, उन्हें स्वजन द्वारा किये गये समझकर प्रसन्न रहो । कोई तुम्हारा बुरा करे तो भी यह सोचकर उसपर दया ही करो कि उस मनुष्य को भले-बुरे की पहचान नहीं है । जो अंधा पुरुष है उसे काले और सफेद रंग में अन्तर कैसे दीख

पड़ेगा ? उसपर हम भला क्रोध कैसे कर सकते हैं ? उसपर तो हमें दया ही आएगी। इसी प्रकार उन आदमियों को दया-भाव से ही देखो जो भले-बुरे का अन्तर नहीं समझते।

मान लो कि तुम हजारों वर्ष जीवित रहते हो। फिर भी मरण अनिवार्य है। उसका दुःख क्षणिक है। भूतकाल तो गया, उसके लिए तुम कुछ कर नहीं सकते। भविष्य भी तुम्हारे हाथ में नहीं है। जो कुछ है वह वर्त्तमान में ही है। इसलिए दीर्घायु और अल्पायु में कोई विशेष भेद नहीं। वर्त्तमान काल का परिमाण सबके लिए समान ही रहता है, यह समझ लो। संसार में हम जो कुछ देखते हैं, सब बारबार होता ही रहता है। उसमें नवीनता है ही नहीं। इसलिए देखी हुई चीजों को सौ बरस तक देखते रहो या दो सौ बरस तक, इसमें क्या अंतर पड़ता है ? अतः मरण से डरने और जीवित रहने की इच्छा रखने की आवश्यकता नहीं।

सारी ही वस्तुएं हमारे उपयोग के अनुसार अच्छी या बुरी होती हैं। बाह्य वस्तुओं की स्वतः कोई शक्ति नहीं। वे हमारे मन ही के द्वारा अच्छी या बुरी बनती हैं।

९. इस संसार में बसे हुए असंख्य जीव और उसमें पाई जानेवाली निर्जीव वस्तुएं भी एक-दूसरे

के साथ कुछ-न-कुछ सम्बन्ध रखती ही हैं। उससे अपने को पृथक् करना शरीर के फोड़े के समान है, जो शरीर के साथ रहते हुए भी उसके कार्यों में सहयोग न देकर उसे पीड़ा पहुंचाने का कारण बन जाता है। अपने-आपको अन्य जीवराशि की अपेक्षा पृथक् या विशेष कोटि में रखना आत्मद्रोह है। अपने निज के दुःख से दुःखी होना भी एक प्रकार से अपने को दूसरे से अलग समझने और जो पराशक्ति सारे जगत् को चलाती है उससे विद्रोह करने के समान है। किसी से द्वेष रखना या किसी पर क्रोध करना भी अन्याय है। सुख-दुःख को समान रूप से न देखना, व्यर्थ सोच-विचार करना, बिना किसी प्रकार के सिद्धांत के जीवन बिताना आत्मद्रोह है। जैसे राजा के शासन को हम सब मानते हैं, उसके कानूनों को पालते हैं, उसी प्रकार हर एक विवेकशील मनुष्य के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वह इस संसार के ईश्वरीय न्याय का पूरा-पूरा पालन करे। यह न्याय दुनिया की बड़ी-से-बड़ी राजनीति से भी बढ़कर है। इसका पालन न करने से वह ईश्वरीय राज्य का विद्रोही तथा आत्मद्रोही भी बन जाता है।

१०. मनुष्य की आयु बीतती जाती है। जीवन नदी के प्रवाह की तरह है। मन को आकर्षित

करनेवाली सब वस्तुएं अस्थिर हैं। मनुष्य के विचार और भाव भी प्रायः अस्पष्ट ही होते हैं। शरीर अनित्य और नश्वर पदार्थों से बना हुआ है। भविष्य को भी हम समझ नहीं पाते। जीवन को एक सतत संग्राम या यात्रा ही कह सकते हैं। केवल ज्ञान से ही मनुष्य अंधकार के पार जा सकता है। आध्यात्मिक ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। आत्मा को विशुद्ध और राग-द्वेष से बचाये रखना ही ज्ञान है। व्यर्थ या अनिष्टकारी चेष्टाओं से, छल-कपट से दूर रहना ज्ञान है। कोई मेरे लिए यह काम करे, यह न करे, ऐसी आशाएं न रखना ज्ञान है। किसी भी अवस्था में स्थितप्रज्ञ रहना ज्ञान है। सुख-दुःख से विचलित न होकर प्रयाणकाल तक चित्त को शान्त रखना ज्ञान है।

मृत्यु क्या चीज है ? यह शरीर पंचभूतों का बना हुआ है। उनके विच्छेद को मृत्यु कहते हैं। पंचभूतों का ऐक्य, परिवर्तन और ह्रास स्वाभाविक और अपरिहार्य है। उससे कोई हानि नहीं हो सकती।

अपने कर्त्तव्यों को मत टालो। आत्मशुद्धि के प्रयत्नों में विलंब मत करो। दिन एक-एक कर बीतते जा रहे हैं। शेष जो दिन रह गये हैं उनमें तुम्हारी बुद्धि की क्या स्थिति होगी, कोई नहीं कह सकता।

शारीरिक शक्ति, विषय-वासनाएं, आजीवन बनी रह सकती हैं; किन्तु क्या पता कि विवेक और ज्ञान रहेगा या नहीं ? वृद्धावस्था में बुद्धि पूरा काम नहीं देती। शरीर के रहते हुए भी मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। इसलिए आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने में विलंब मत करो।

प्रकृति का सौन्दर्य देखो और उसका अनुभव करो। त्रुटियां होते हुए भी उसका सौन्दर्य उच्च कोटि का है। अच्छी तरह सिकी हुई रोटी में कुछ-कुछ बारीक काले निशान अवश्य होंगे। पकी हुई वह तभी समझी जायगी, और खूबी भी उसकी उसी में है। खाने योग्य पका हुआ फल बाहर से खुरदरा हो सकता है। पर इससे हम उसका तिरस्कार नहीं करते। धान की बालें भी झुकी हुई होती हैं, जानवरों के मुंह और दांतों में भी सौन्दर्य है। अलग-अलग शायद वे सुन्दर प्रतीत न हों, परन्तु अपने-अपने शरीर के साथ वे सुन्दर ही लगते हैं। जो प्रकृति के सौन्दर्य को पूरी तरह अनुभव करना जानता है, वह किसी भी वस्तु में कुरूपता नहीं देखता। शिल्पी के खोदे हुए जानवरों के रूपों को देखकर हम प्रसन्न हो जाते हैं। वास्तव में, शेर, रीछ, कुत्ते और सूअर इत्यादि जानवरों के रूप में भी सौन्दर्य होता है। जो प्राकृतिक सौन्दर्य

को समझता है वह बूढ़े नर-नारियों में भी सौन्दर्य देखता है। वह युवावस्था के रूप की भी प्रसंशा निष्कलंक भाव से करता है। उसकी दृष्टि ही निर्मल होती है ऐसे ज्ञानी को बहुत-सी ऐसी चीजें समझ में आ जाती हैं जो दूसरे लोग नहीं समझ पाते।

११. तुम्हारी यात्रा समाप्त हुई। नाव से अब तुम उतरोगे। किनारे पर आ जाओ। घबराओ मत। परलोक भी ईश्वराधीन है। उसपर यदि तुम्हें श्रद्धा नहीं तो भी निश्चित रहो। कम-से-कम इस शरीर की चिन्ता से तो मुक्त हो जाओगे। आत्मा नित्य वस्तु है, तेजोमय है। शरीर सड़कर बिगड़ जानेवाला है। इसलिए इस तुच्छ शरीर के फंदों से आत्मा का छूट जाना अच्छा ही है।

१२. मन से बुरे विचारों को निकाल दो। यदि तुमसे कोई पूछे कि इस ममय क्या सोच रहे हो तो सही-सही जवाब दे सकने की दशा में रहा करो। दूसरों को बताने में संकोच हो ऐसे विचारों को मन में आने ही न दो। तुम्हारे सारे विचार दूसरों को लाभ पहुंचानेवाले, नेक और निःस्वार्थ होने चाहिएं। इच्छा, द्वेष, ईर्ष्या, काम आदि दुर्भावनाओं को मन में स्थान न दो।

जो मन को वश में रखता है, जो शुद्ध विचार करता है, वही ईश्वर का सच्चा भक्त है। आत्मा

तो परमात्मा का अंश है। सच्चा भक्त आत्मा पर सुख-दुःख का प्रभाव नहीं पड़ने देगा। राग-द्वेष, काम-क्रोधादि के साथ लड़कर वह सदा उनपर विजय पाएगा। वह निष्काम कर्म करता रहेगा। पर-हित में ही अपना कर्त्तव्य-धर्म समझेगा। जिनका आचरण धर्म के विरुद्ध नहीं होता उन्हीं लोगों की सराहना चाहेगा। जो ईश्वर का सच्चा भक्त है वह दुराचारी, स्वार्थी मनुष्यों से दूर रहेगा। वह ऐसे आचार-व्यवहार रखेगा जिनसे विश्वरूपी परमात्मा को अच्छी तरह समझनेवाले और उस जगन्नियन्ता के नियमों का पालन करनेवाले ज्ञानीजन संतुष्ट रहें।

१३. कोई भी काम करो तो उसे मन लगाकर, विवेकपूर्वक, परहित को ध्यान में रखकर करो। व्यर्थ बातें न करो। दूसरों के काम में दखल न दो। अपने वाक्चातुर्य से कमजोरियां छिपाने का प्रयत्न न करो। अपने हृदय में बसनेवाले परमात्मा की उपासना करो। धैर्य और नीति से कभी विचलित न होने वाले राजा बनो। जैसे योद्धा किसी क्षण भी आज्ञा पाते ही युद्ध में जाने के लिए कटिबद्ध रहता है ठीक वैसे ही मृत्यु का बुलावा आने पर उसके लिए तैयार रहो। हृदय को सच्चा और प्रसन्न रखो। दूसरों का सहारा तुम्हें क्यों चाहिए ?

१४. जीवन में तुम्हें किस वस्तु से सच्चा लाभ होता है ? न्याय, सत्य, स्फटिक जैसी बुद्धि और धैर्य इनके सिवाय और चाहिए ही क्या ? अपने मन को स्वच्छ रखने से मनुष्य बुद्धिमान होता है। बुद्धिमान बनना हर एक मनुष्य के अपने हाथ में है। ललाट-लेख को शायद तुम बदल नहीं सकते; किन्तु इष्ट और अनिष्ट को समान भाव से देखना तुम्हारे अपने हाथ में है। अगर सुख पाने का और कोई तरीक़ा तुम्हें सूझे, तो ज़रूर उसका प्रयोग करो। आध्यात्मिक तत्व ही सबसे ऊंचा है। विचारों को वश में रखो, इन्द्रियों का निग्रह करो, ईश्वर पर श्रद्धा रखो और सदा पर-हित-रत रहो। बाकी सब बिषयों को तुच्छ समझो। मन को इधर-उधर न भागने दो; नहीं तो पीछे उसके वेग का रोकना असंभव हो जायगा। सब दुःखों का निवारण इसी में है। धन, दौलत, कीर्ति—यह सब वृथा है।

तुम सोच सकते हो कि सुखों को भोगने की इच्छा मुझे अवश्य है किन्तु मेरे ऊपर उसका अधिकार जमा नहीं है। यह मिथ्या बात है कि सुख-भोग की इच्छा रखते हुए भी आत्मा को बचाया जा सकता है। इसमें धोखा खा जाओगे। थोड़े समय तक विषय-वासनाएं तुम्हें इस भ्रम में डाल रखेंगी कि वे तुम्हारे अधीन हैं, परन्तु अन्त में तुम्हें

नीचे गिरा देंगी। उनका सामना न कर सकोगे। इसलिए मन को प्रारम्भ से ही शुद्ध और दृढ़ रखो। सत्य का अनुसरण करो। यही साधना है। यह विवाद उठाया जा सकता है कि सुखद वस्तुओं से दूर रहने की क्या आवश्यकता है? यह अवश्य विचारणीय है। पाशविक सुखों को हम सच्चा, सुख क्योंकर मानें? मनुष्य को बुद्धि दी हुई है। बुद्धिपूर्वक सोचने पर जो सुख ऊंचे दर्जे का मालूम हो वही सच्चा सुख है। जिससे केवल शरीर को सुख पहुंचता है वह कभी सच्चा सुख नहीं हो सकता। दृढ़तापूर्वक ऐसे सुखों की इच्छा से दूर रहो, लेकिन विनय के साथ। अहंकार और घमंड से दूर रहो।

सत्य को छोड़कर प्राप्त की हुई वस्तु से आनन्द नहीं मिल सकता। जिस वस्तु से तुम्हारे गौरव पर बट्टा लगता हो उससे दूर रहो। घृणा, विरोधभाव, ढोंग इत्यादि को छोड़ो। उनकी खोज में मत पड़ो। जिस भोग को तुम दूसरों से छिपकर दीवार या परदे की आड़ में भोगते हो उससे सच्चा आनन्द कैसे प्राप्त हो सकता है? हृदय-स्थित ईश्वर जिसकी अनुमति देता है उसी धर्म के अनुयायी बनो। उस सत्य मार्ग पर चलनेवाले को कभी ग्लानि नहीं होगी। उसे संन्यास ग्रहण करके वन

में जाने की आवश्यकता नहीं। उसे अपने आसपास बन्धुजनों की भीड़ लगाये रखने की भी जरूरत नहीं। वह हर्ष-शोक, इच्छा-द्वेषों से विमुक्त और निश्चिन्त रहता है। ज्ञानी मनुष्य काल से भी नहीं डरता। प्राणों की उसे परवा नहीं रहती। शरीर-धर्म का पालन करते हुए जैसे वह मल-त्याग करता है वैसे ही खुशी-खुशी प्राण छोड़ देता है।

१५. तुम्हे वह विवेक-बुद्धि प्राप्त है जिसकी मदद से तुम सोच-समझकर किसी निर्णय पर पहुंचते हो। इसे बहुत सावधानी से काम में लाओ। विवेक मनुष्य के लिए बड़ा भारी अवलंब है। मनुष्य का मन स्वाभाविक धर्म के विरुद्ध जब कभी चलने लगता है तब विवेक ही उसको मार्ग-दर्शन कराता है। जो भी विचार करो उसमें विवेक की पूरी मदद लो। उतावलेपन की जरूरत नहीं। सत्संगति रखो। ईश्वर में तुम्हारी श्रद्धा सदा बनी रहे।

१६. जीवन में कई घटनाएं होती हैं। उनपर ठीक-ठीक विचार करने का अभ्यास डालो। यह अभ्यास तुम्हारे अन्दर उदारता पैदा करेगा। हमेशा इस बात का ध्यान रखो कि तुम्हारे अमुक कार्य का दूसरों पर क्या अच्छा असर पड़ेगा, उससे दूसरों को क्या लाभ पहुंचेगा, विश्व की रचना में उसका क्या स्थान है और दूसरों का उससे कुछ बुरा तो नहीं

होगा? विश्व एक बहुत बड़ा राज्य है। उसके अन्तर्गत देश और राष्ट्र एक राज्य के अधीन छोटे-छोटे परिवारों के समान हैं।

हर एक घटना की पूरी तरह से जांच-पड़ताल करो। उसके मूल कारण, उसकी अवधि और इन बातों का पूरा विचार करो कि उससे तुम्हारे अंदर सहिष्णुता, धैर्य, सत्य, श्रद्धा, अपराधीनता आदि सद्गुण उत्पन्न होते हैं या नहीं।

किसी भी कारण से विह्वल मत बनो। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि ये बातें वस्त्र में सूत की तरह जीवन में ओतप्रोत है। सब कुछ ईश्वर के हाथ में है। इसलिए किसी भी घटना से दुःखी न हो। कोई तुम्हारा बुरा करे तो यही सोचो कि बुरा करनेवाला भी तुम्हारा बन्धु है, मित्र है। अनजाने अपने स्वभाव से प्रेरित होकर उसने ऐसा काम किया है। मुझमें तो समझ है। सामाजिक ऐक्य को वह भूल गया, तो मैं क्यों भूलूं? मैं तो उदारता और न्याय को नहीं भूल सकता।

१७. जो बीत चुका है उसके लिए शोक मत करो। जो होनहार है उसकी भी चिन्ता न करो। अभी जो जीवन तुम बिता रहे हो उसे दृढ़तापूर्वक, सोच-समझकर, धर्मपथ से बिलकुल विचलित न होकर बिताओ। विशुद्ध कन्या की तरह तुम्हारी आत्मा

स्वच्छ रहे। मरण के बाद उसे परमात्मा को सौंपने-योग्य हमेशा स्वच्छ रखो। अमुक वस्तु पानेवाला हूं, इस विचार से व्याकुल बनना या अमुक वस्तु से डर लग रहा है, उससे कैसे अपने को बचाऊं, इस विचार से भयभीत रहना, ये दोनों ही बातें बुरी हैं। सब कुछ ईश्वराधीन है। वाणी में सत्य और धैर्य हमेशा रहे। तभी तुम सच्चा सुख पा सकते हो। इस तरह रहोगे तो बाह्य वस्तुओं से, चाहे वे कैसी भी हों, तुम्हारे मन की शक्ति भंग न होगी।

१८. शस्त्र-चिकित्सा करनेवाला वैद्य अपने औजारों को काम में लाने के लिए सदा तैयार रखता है। तुम्हारा शस्त्र तत्वज्ञान है। मौक़ा पड़ने पर काम में ला सकने की स्थिति में अपने ज्ञान को रखो। क्या मालूम कब दैव या मनुष्य तुम्हारे ऊपर हमला कर दे और तुम नितान्त विवश और दुःखी हो जाओ। ज्ञान से उसका सामना करो। छोटे-बड़े काम करते हुए यह याद रखो कि तुम्हारे और दूसरों के बीच सम्बन्ध हमेशा रहता है। परमार्थ समझे बिना ऐहिक जीवन सम्पूर्ण नहीं हो सकता। प्राकृतिक धर्म को भूलकर तुम परमार्थ की ओर नहीं जा सकते। दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

१९. मनुष्य स्थिरमतिपूर्वक जीवन तभी चला सकता है जब वह जान लेता है कि जगत्‌रूपी जीव

का वह एक अंश है, उससे पृथक् नहीं। बुद्धिमान आदमी तृष्णारहित रहता है। वांछित वस्तु प्राप्त होने या न होने पर उसका मन चंचल नहीं हो जाता। शान्त रहने की शक्ति उसे साधना से मिली हुई होती है। विघ्नों को वह आत्मशक्ति की प्रगति में सहायक समझता है। देदीप्यमान अग्नि में कोई चीज़ डालो तो उससे अग्नि नहीं बुझती। जो चीज़ उसमें पड़ती है वह स्वयं जलकर अग्नि की ज्वाला को और अधिक बढ़ा देती है। अपने मन को उस अग्नि की भांति रखो।

२०. कुछ लोग एकान्त की खोज में रहते हैं; समुद्र-तट पर, पहाड़ों में, वन और निर्जन स्थानों में आश्रम बनाकर रहने लगते हैं। तुम भी यही करना चाहते हो? इससे बढ़कर और कोई मूर्खता नहीं हो सकती। जब चाहो, कहीं भी एकान्त स्थान पाना शक्य है। अच्छे विचारों और साधना से चित्त को जो शान्ति प्राप्त होती है उससे अधिक वह किस एकान्तवास में मिल सकती है? जब आवश्यकता पड़े तब अपने मनरूपी एकान्त-आश्रम में प्रवेश करो। उससे तुम्हें शान्ति मिलेगी। बल बढ़ेगा। वहां एकाग्रचित्त से तत्वचिन्तन करो। उससे राजकीय समस्याओं या उलझनों को भूल जाओगे। दुनिया के संकटों का सामना करते हुए

मन को प्रफुल्लित रखने की यही औषधि है।

२१. उदास क्यों हो रहे हो? दुर्जनों की करतूतों से तुम दुःखी हो क्या? प्राणियों को समझ इसीलिए प्राप्त है कि वे दूसरों से मिलजुलकर रहें। क्षमा मनुष्य का धर्म है। बुरा काम जब कोई करता है तब वह अपने मन के विरुद्ध चलता है। अबतक करोड़ों मनुष्य आपस में वैर कर चुके हैं। दुश्मनी करके युद्ध कर चुके हैं। अन्त में स्वयं मर मिटने के अतिरिक्त उन लोगों ने क्या पाया? इन बातों का विचार कर चित्त में शान्ति रखो।

क्या तुम अपने अदृष्ट से दुःखी हो? यह विश्व अणुओं की स्वतंत्र चेष्टा से चलता है या किसी नियन्ता के आदेश से, इसका विचार करो। तुम देखोगे, विश्व की सभी बातें नियमबद्ध हैं।

क्या तुम किसी शारीरिक रोग से पीड़ित हो? यह कभी मत भूलो कि शरीर और आत्मा अलग-अलग वस्तुएं हैं। शरीर के दुःख का मन पर असर मत पड़ने दो। मन, जिसे अपने बल की पहचान है, शरीर के दुःख की परवा नहीं करेगा। शरीर और उसके रोगों के बारे में तुमने बहुत कुछ सुना है। क्यों, बहुत कुछ तुमने खुद लिख भी डाला है। उन बातों को ध्यान में लाओ।

क्या तुम कीर्त्ति की चिन्ता में पड़े हो? कीर्त्ति तो तुच्छ होती है। देखो तो सही, यहां सबकुछ कितनी शीघ्रता से नष्ट हो जाता है। असंख्य युग बीत चुके हैं। भविष्य भी अनन्त है। अनन्त काल के लेखे में किसी की प्रशंसा क्या चीज़ है? वह आखिर है भी क्या? मूर्खजन, जिनका कोई स्थिर मत नहीं होता, तुम्हारे बारे में कुछ बातें तुम्हारी पसन्द की कह दें तो उसे तुम प्रशंसा समझते हो! वह प्रशंसा कहांतक फैल सकती है? ब्रह्मांड में इस जगत् का परिमाण एक अणु के बराबर है। दुनिया का यह कोना जिसमें हम वास करते हैं उस अणु का भी अणु है। उसमें भी, कितने और किस प्रकार के लोग तुम्हारी प्रशंसा करते हैं?

सब बातों को भूलकर अपने मनरूपी निर्जन झोपड़े में चले जाओ और वहां बैठकर मनन करो। स्वतंत्र बनो। मनन करते समय यह कभी न भूलो कि विश्वरूपी वृहत् परिवार के तुम एक सदस्य हो। एक-न-एक दिन तुम्हें इस दुनिया को छोड़ना ही होगा। इस प्रकार के विचार-चिन्तन से बहुत लाभ है। आत्मा पर विषय-भोग, सुख-दुःख कुछ भी असर नहीं डाल सकते। ये तो बाह्य वस्तुएं हैं। तुम्हारा मन व्यर्थ ही चिन्ता करता है। यहां की समस्त वस्तुएं क्षणभंगुर हैं। तुमने अपनी आंखों से कितनी

ही बार मृत्यु को देखा है। यही जगत् की नीति है। मनन ही मानव-जीवन है।

हर एक मनुष्य स्वतः समझदार होता है। वह जानता है कि क्या काम करना चाहिए और क्या नहीं। धर्म और न्याय सभी के लिए एक ही प्रकार का होता है। इसलिए समस्त मानव-जाति एक ही विधान के अधीन है।

२२. प्रकृति से ही मेरे शरीर के सभी भाग बने हुए हैं। पहले से जो वस्तु होती है वही दूसरी वस्तु की उत्पत्ति का कारण है। शून्य से उत्पत्ति नहीं हो सकती। पृथ्वी, जल, वायु और तेज से मेरा शरीर बना हुआ है। ज्ञानरूपी मेरी आत्मा का भी मूल कारण अवश्य कोई-न कोई होगा ही। वही परमात्मा है। जैसे शून्य से कोई वस्तु पैदा नहीं हो सकती वैसे ही वस्तुएं नष्ट होकर शून्य नहीं हो सकतीं। मेरी आत्मा अवश्य किसी शाश्वत एवं परम वस्तु से ही उत्पन्न हुई होगी।

जैसे जन्म होता है उसी प्रकार मृत्यु भी होती है। भूतों का ऐक्य जन्म तथा ह्रास मृत्यु है। इसमें चिन्ता की क्या बात है? मरण तो प्रकृति का स्वभाव है।

अपने-अपने स्वभाव के अनुसार मनुष्य चलते हैं। वटवृक्ष में दूध ज़रूर होता है। अगर हम

चाहें कि वैसा न हो तो यह संभव नहीं है। आयु चिर नहीं हो सकती। मरना सबका निश्चित है। जिस बात को हम सच समझ रहे हैं वह मिथ्या हो जायगी।

२३. शोक चिन्ता से होता है। इसलिए चिन्ता छोड़ो।

२४. जो मेरे गुण को नहीं बिगाड़ सकता वह मेरे जीवन को भी नहीं बिगाड़ सकता, उसे हानि नहीं पहुंचा सकता।

२५. कोई तुम्हारा बुरा करे, तो उसके बुरे विचारों को अपने मन में स्थान न दो। वह जिन बुरे भावों को तुम्हारे अन्दर लाना चाहता है उन्हें अपने हृदय में स्थान न दो। यदि ऐसा करोगे तो किसी भी कष्ट का असर तुम्हारे ऊपर नहीं पड़ सकता। सभी विषयों का ठीक-ठीक विचार करो।

२६. तुम में दो गुण अवश्य होने चाहिएं। एक तो यह कि प्रजा की भलाई को मन में रखकर राज्य का व्यवहार चलाओ और दूसरा यह कि कोई तुम्हारे विचार को गलत साबित करे और तुम्हें भी उसका कहना ठीक लगे तो अपने विचारों को बदल दो। प्रत्येक कार्य न्याय और लोकहित को ध्यान में रखकर करो। दूसरी तरह से चलूं तो

आसानी होगी अथवा प्रशंसा का पात्र बनूंगा, यह सोचकर अपने विचारों को मत बदलो।

२७. प्रकृति से तुम पैदा हुए हो और उसी में समा जाओगे। जिन मूल वस्तुओं से तुम्हारा जन्म हुआ है उन्हीं में फिर मिल जाओगे, बस।

२८. जीवन को इस प्रकार न बिताओ, मानो तुम सैकड़ों वर्ष जीनेवाले हो। मृत्यु दरवाज़े पर खड़ी है। कभी भी अन्दर प्रवेश कर सकती है। उसकी अभी से तैयारी रखो। अपने अन्तःकरण को स्वच्छ रखो। दूसरों ने क्या किया, क्या सोचा, ऐसी-ऐसी व्यर्थ बातों में समय मत गंवाओ। आत्मनिरीक्षण करो और धर्म-मार्ग पर चलो। इससे समय का अपव्यय नहीं होगा, तुम्हारा भी भला होगा। इधर-उधर मत देखो। सामने की ओर देखकर चलो।

इस बात की भी लालसा मत रखो कि मरने के बाद तुम्हारी कीर्त्ति हो। जब तुम नहीं होगे तब तुम्हारे बारे में लोग क्या कहेंगे इसकी तुम्हें क्यों चिन्ता? तुम तो उन बातों को सुन नहीं सकोगे? दूसरे जो जीवित होंगे वे सुनेंगे, किन्तु उन्हें इसकी क्या पड़ी है? इसलिए विवेकपूर्वक धर्मसम्मत कार्य करो।

२९. सुन्दर वस्तु की सुन्दरता किसी के सराहने या निंदा करने से बढ़ती-घटती नहीं।

जब हमारी आंखों को दीखनेवाली साधारण वस्तुओं की यह बात है तब उच्च कोटि का सौन्दर्य जो नीति, न्याय, सत्य, प्रेम विनय आदि गुणों में रहता है, वह किसीके सराहने से या निंदा करने से कैसे बढ़ या घट सकता है? माणिक्य-मणि की कोई स्तुति न करे तो वह कम सुन्दर थोड़े ही हो जाता है? सुवर्ण, रेशम, हाथीदांत, संगीत-वाद्य और खड्ग तथा पुष्प इत्यादि में सौन्दर्य स्वाभाविक रूप से निहित है।

३०. हे जगत्! तुझे जो ठीक जंचता है, मेरे लिए वही ठीक है। तुझे जब लगे कि यह समय ठीक है, मुझे वह स्वीकार है। हे प्रकृति! तुझ से भी यही कहता हूं। तुझी से सब कुछ पैदा हुआ है। तू सब चीज़ों का आधार है, अन्त में सब कुछ तुझ में ही लय हो जायगा।

दुनिया जगन्नियन्ता की राजधानी है। देशभक्त को अपने देश और अपने गांव से प्रेम और गर्व होना चाहिए।

एक मुनि ने कहा है कि यदि शांति चाहते हो तो बहुत से संकल्प और व्रत कर लेना ठीक नहीं। जो कार्य अत्यन्त आवश्यक हो, समाज की भलाई के लिए हो, वही करो; जब करना चाहिए, तभी करो। कामों की सूची लंबी न करो। जो कुछ भी करो, वह सन्मार्ग के विरुद्ध न हो। हम जो कुछ करते हैं,

बोलते हैं, वह अधिकांश में किसी महत्व का नहीं होता। व्यर्थ बातों को छोड़ दें तो समय भी बचेगा और मन को ग्लानि भी नहीं होगी। व्यर्थ बातें न सोचने से व्यर्थ कामों से भी हम बच जायंगे।

एक प्रयोग करो। जो कुछ तुम्हें मिला है उसमें संतोष मानो। तुमको जो हिस्सा मिला है उससे खुश रहो। तुम्हारे कार्य न्यायपूर्ण रहें, चाहे दूसरे कुछ भी कहें। तुम्हारे हृदय में प्रेम रहे। दूसरों का हृदय साफ न हो तो उसकी चिन्ता मत करो। यह प्रयोग करके देखो। तुम अवश्य आनन्द पाओगे।

एक यह प्रयोग हुआ। यह काफ़ी है। किन्तु एक दूसरा भी प्रयोग करने योग्य है। वह यह कि शंका को छोड़ो।

यह सच है कि तुम्हें नुक़सान पहुंचाने की कोशिश की गई है। पर नुक़सान उसी को है जिसने तुम्हें तकलीफ़ देनी चाही। तुम्हें कष्ट पहुंचा भी हो तो क्या? जो होनेवाला होता है वह हुए बिना नहीं रहता। वह अनिवार्य होता है। उससे व्याकुल नहीं होना चाहिए। आयु की अवधि अल्प होती है। अभी जो समय तुम्हारे हाथ में है उसका लाभ समझदारी के साथ धर्म-मार्ग पर चलकर उठाओ।

३१. यह संसार जगन्नियन्ता का रचा हुआ हो या अणुओं के अकस्मात् मिल जाने से बन गया हो,

कुछ भी हो, नियमबद्ध यह अवश्य है । ब्रह्मांड के विखरे हुए विभिन्न अंश, एक दूसरे से आकर्षित, एक नियन्त्रण से बद्ध हैं । तुम्हारे अन्दर भी एक नियम तो है ही । इस सब को चलानेवाला ईश्वर अन्याय नहीं कर सकता ।

३२. तुम्हारे अन्दर कितने बुरे विचार, कितनी बुरी भावनाएं भरी पड़ी हैं ! कितना भय, कितनी निर्दयता, कितनी पाशविकता, कितनी क्रूरता कितना आलस्य, कितना लोभ और कितनी कृपणता है !

३३. परदेशी आदमी जहां जाता है वहां की बातें उसे मालूम नहीं होतीं । जो व्यक्ति दुनिया के कानूनों को नहीं मानता, समझता नहीं, वह दुनिया के लिए पराया माना जायगा । ज्ञानरूपी आंखों का जो उपयोग नहीं करता वह अंधा नहीं तो और क्या है ? सुखद स्वावलंवन को छोड़कर जो दूसरों के भरोसे रहता है, वह दीन भिखारी नहीं तो और क्या है ? जिन मूल कारणों से हम सब उत्पन्न हुए हैं वे ही हमारे कार्यों के तथा यहां की घटनाओं के भी कारण होते हैं । कोई जगत् से घृणा करे या अपने को औरों से अलग समझे तो वह कुलभ्रष्ट होता है । विश्वधर्म का पालन हर एक के लिए आवश्यक है । तुम्हारी आयु के जो दिन बचे हैं उनमें विश्वेश्वर पर भरोसा रखकर, उसीको सब कुछ अर्पण कर, संतुष्ट रहो । तुम्हें

इस बात की प्रसन्नता होनी चाहिए कि मैं कुरीति की ओर नहीं गया, मैंने किसी की स्वतंत्रता नहीं छीनी, न मैं किसी का गुलाम बना।

३४. दुनिया में स्थायी कुछ भी नहीं होता। भूतकाल में जो कुछ हुआ उसे हम एक कहानी की तरह याद रखते हैं। लेकिन उसे भी कुछ दिन बाद भूल जायंगे। जब बड़े-बड़े प्रभावशाली लोग भी सदा के लिए नहीं रह पाते, तब साधारण व्यक्तियों का तो ठिकाना ही क्या? जीव के छूटते ही लोग भूलने लगते हैं। औदासीन्य, शील, सत्य और क्षमा ये ही वस्तुएं सनातन हैं। जो कुछ भी आये, उसे राज़ी-खुशी से स्वीकार करो।

३५. दुनिया की ये सभी चीजें क्यों पैदा होती हैं, क्यों चली जाती हैं, फिर दूसरे रूप में क्यों दिखाई देती हैं, इस बात का विचार करो। अध्ययन करो। बिखरी हुई वस्तुओं से नई-नई चीजों को बनाते रहना यह प्रकृति का सनातन नियम रहा है। प्रकृति हमेशा बनी हुई चीजों को बिगाड़ने और बिगड़ी हुई चीज़ों को फिर से बनाने में आनंद पाती है। यह उसका खेल है, उसकी लीला है। मिट्टी में जो बोया जाता है सिर्फ वही बीज नहीं होता। इस संसार में हम जो कुछ देखते हैं उन सब वस्तुओं से अन्य नई-नई उत्पत्तियां होती रहती हैं।

३६. अब, दूसरी घड़ी में तो तुम मरण पानेवाले हो। अपने हृदय को तुम अब भी साफ़ नहीं कर पाये! तुमने शांत रहना नहीं सीखा! कष्ट और दुःख से तुम्हारा डर छूटा नहीं! अभीतक यह नहीं जान पाये कि उदासीनता ही सुख का मार्ग है। यह समझने का प्रयत्न करो कि ज्ञानीजन किस वस्तु के लिए प्रयत्नशील हैं और किन चीज़ों से दूर रहते हैं।

३७. यह संसार मानो एक बृहत् शरीर है, बृहदात्मा है। यहांके समस्त जीव उसी में आ जाते हैं। समष्टि से व्यक्ति पृथक् नहीं है। बुने हुए वस्त्र के सूत की तरह सब चीजें एक-दूसरे से ओतप्रोत हैं।

एपिक्टेटस ने जैसा कहा है—"इस जीवन में क्या रखा है? निर्जीव शव को आत्मा ढोती फिरती है।"

नश्वर शरीर के लिए कोई भी कष्ट वास्तव में कष्ट हो नहीं हो सकता। दुनिया क्या है? वेग से बहती हुई नदी के समान है वह। जो कुछ आंखों को दीखता है वह कालरूपी प्रवाह में बह जानेवाला है। जो दीखता था उसकी जगह हम दूसरा ही कुछ देखते हैं। बाद में वह भी प्रवाह के वेग में लीन हो जाता है।

यहां 'नवीनता' जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। सब-की-सब देखी हुई हैं। ऋतु के अनुसार फूल

और फल होते हैं। ऋतु के समाप्त होने पर वे नहीं रहते। ऐसे ही सब कुछ चलता रहता है। व्याधि, मरण, छल, कपट, द्रोह, सुख आदि सब इसी प्रकार के होते हैं। ज्ञानी इनसे प्रफुल्लित अथवा व्यथित नहीं होते।

यदि कोई ज्योतिषी तुम्हें यह बताये कि तुम कल या परसों मर जानेवाले हो, तो तुम्हें कल और परसों में विशेष अन्तर मालूम नहीं पड़ सकता। इसी तरह, थोड़े दिन और कुछ वर्ष इसमें भी विशेष अन्तर नहीं है।

कितने ही वैद्य यह वादा करके कि बीमारों को हम अच्छा कर देंगे, स्वयं पहले मर चुके हैं! अमरत्व के विषय में तर्क-वितर्क करके कितने ही पण्डित बेचारे खुद मृत्यु का सामना न कर सके! सैकड़ों को मारने के बाद हजारों सैनिक खुद मर-मिट गये! कितने ही अहंकारी और अत्याचारी राजा समझते थे कि उनके निकट मृत्यु कभी फटक नहीं सकती। आज वे कहां हैं? उनकी वह उछल-कूद समाप्त हो गई। उनका नामोनिशान भी नहीं रहा। बड़े-बड़े शहर, जिनके जन-कोलाहल का पार नहीं था, आज मृतवत् गिरे पड़े हैं। प्रत्येक प्राणी के लिए मरण अनिवार्य है। जीवन-काल में जहांतक हो सके अच्छा आचरण रखो। पेड़ से

पककर जो फल गिरता है उसे देखो। अपने जीवन को किस सरलता से, कितनी अच्छी तरह, खुशी से बिताकर बाद में वह मिट्टी में मिल जाता है। उसका उदाहरण लो। बुढ़ापे और मौत की चिन्ता मत करो। बड़े तत्त्वज्ञान की जरूरत नहीं। यह समझ लो कि अनन्त काल के बीच में तुम्हारा जीवन-काल विशेष महत्त्व का नहीं हो सकता। कोई तीन महीना जीये, दूसरा तीन सौ बरस, इसमें कोई फ़र्क नहीं आता। मरना तो आख़िर पड़ेगा ही। अधिक वर्ष जो जिये उन्होंने दूसरों की अन्त्येष्टि करने के उपरान्त और क्या लाभ देखा ?

३८. समुद्र-तट की चट्टानों पर लहरें सदा टकराती रहती हैं। उनके प्रहारों से चट्टानों को कुछ नहीं होता। अपने हृदय को वैसा ही बलवान बनाओ।

विपत्ति को देखकर हाय-हाय न मचाओ। धैर्य और दृढ़ता के साथ विपत्ति का सामना करो। इस बात की खुशी मनाओ कि तुम्हारे अन्दर दूसरों के मुक़ाबले अधिक निर्भयता और स्थिरता है ! जीवन का ध्येय क्या है ? जबतक कोई भी घटना तुम्हारे सत्य, विनय, स्वावलम्बन और उदारता पर बुरा प्रभाव न डाले तबतक उसे विपत्ति समझना ही नहीं चाहिए। स्वच्छ हृदय ही सबसे अधिक आनन्दप्रद

होता है। विरक्ति को विपत्ति मत मानो। उसे सहन करने की शक्ति को बड़ा भाग्य समझो।

प्रातःकाल शीघ्र उठने के बदले बिस्तर पर पड़े रहना क्यों पसन्द करते हो? ठंढ से डरकर बिस्तर पर कम्बल ओढ़कर बैठे रहने के लिए तुम पैदा नहीं हुए हो। एक-एक दिन तुम्हें कर्त्तव्य-पालन करने के लिए मिला है। उठने में विलम्ब न करो।

तुम्हारे जीवन का ध्येय क्या है? तुम्हारे कर्त्तव्य क्या हैं? अपने आसपास नज़र डालो। पेड़-पौधों को देखो। किसी बाह्य प्रेरणा के बिना ही कितनी फ़ुर्ती के साथ सब जीवकोटियां अपने-अपने नियत काम करती जा रही हैं। छोटीसी चींटी, नन्हींसी चिड़िया, मक्खी और भौंरे को देखो। तुम भी अपना काम वैसे ही क्यों नहीं करते? तुम कहोगे कि विश्राम की भी तो जरूरत होती है। ठीक है, किन्तु विश्राम भी कुछ हद तक ही लेना चाहिए। भूख और प्यास का उदाहरण लो। जितनी भूख हो, जितनी प्यास हो, उसस अधिक तुम खा-पी नहीं सकते। यही न्याय विश्राम के विषय में भी क्यों न हो?

३९. मन में चंचलता पैदा करनेवाली चीजों से दूर रहना कुछ कठिन नहीं। असल में, हम अपनी शक्ति को पहचान नहीं रहे हैं।

तुम्हारे अन्दर कुशाग्र बुद्धि नहीं है, इसकी चिन्ता न करो। उसके लिए उपाय भी तो नहीं। किन्तु कुशाग्र बुद्धि के अतिरिक्त और कई गुण तुममें हैं। उनकी सहायता से तुम अपने जीवन को उन्नत कर सकते हो। सुख-भोग की इच्छा न रखना, शारीरिक कष्ट की परवा न करना, सचाई से रहना, यह तुम्हारे लिए शक्य है। इन अच्छे गुणों का उपयोग करने में कृपणता न दिखाओ। कोई तुम से जबर्दस्ती यह नहीं चाहता कि तुम असतुष्ट रहो, पराये धन की कामना करो, गर्व करो या दूसरों की खुशामद करो। इस तरह के आचरण तुम्हारे लिए स्वाभाविक भी नहीं हैं। कोई इस बात पर जोर नहीं दे रहा है कि तुम भारी बुद्धिमत्ता के साथ, जिसका तुम में अभाव है, वर्ताव करो। बुद्धि तो अपनेआप काम करती है। बुद्धि भी तुम अभ्यास से थोड़ी-बहुत प्राप्त कर सकते थे, उसका भी तुमने प्रयत्न नहीं किया। तुम मे जो गुण हैं वे पर्याप्त हैं। उनका भी तुमने पूरा उपयोग नहीं किया, यह तुम्हारी भूल है।

४०. ठठेरे, बढ़ई आदि कारीगरों को देखो। अपने काम की लगन में वे नहाना-धोना, खाना-पीना सब-कुछ भूल जाते हैं। बढ़ई अपने कार्य में जो तत्परता दिखलाता है उससे कहीं अधिक तत्परता अपने मन की स्वच्छता को बनाये रखने में होनी चाहिए,

क्योंकि तुम्हारा ध्येय उस से उच्च है। नटी को नाट्य की जितनी चिन्ता रहती है उतनी भी चिन्ता तुम अपनी भलाई की नहीं कर रहे हो! लोभी अपने धन की ओर और खुशामद-पसन्द अपनी स्तुति की ओर जितना ध्यान देते हैं उतना तो ध्यान तुम्हें अपने कर्त्तव्यों की ओर देना ही चाहिए। लोग अपने लाभ के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं, ठीक तरह से खाते-पीते भी नहीं और सोते भी नहीं। फिर तुम क्यों अपनी लक्ष्य-प्राप्ति के लिए, जो कि अति उत्तम है, कुछ नहीं कर रहे हो?

४१. कुछ लोग दूसरों का कुछ काम कर देते हैं तो उसका अपने पास लिखित प्रमाण रख लेते हैं, ताकि उसे कोई भूल न जाय और मौका आने पर उसका बदला भी मिल जाय। कुछ लोग अपने किये उपकारों को लिख नहीं रखते किन्तु हमेशा याद रखते हैं और जिन्हें उनके द्वारा लाभ पहुंचा हो उन्हें अपने प्रति ऋणी समझते रहते हैं। किन्तु ऐसे भी कुछ लोग होते हैं जो दूसरों की मदद करते हैं और तत्क्षण उसे भूल भी जाते हैं। मीठे अंगूर का पेड़ मौसम आने पर सबको मधुर फल खिलाता है, प्रत्युपकार की आशा नहीं रखता। घोड़ा दौड़ता है तुम्हारे काम से। शिकारी कुत्ता और मधुमक्खियां भी बिना किसी स्वार्थ के तुम्हारे काम कर देती हैं।

इसी तरह, जिस मनुष्य ने किसीकी कुछ मदद की हो उसे दूसरे से उसकी बात भी नहीं करनी चाहिए। नेक आदमी एक बार कोई अच्छा काम करता है तो यही चाहता है कि बार-बार उसको ऐसा अवसर मिलता रहे।

४२. रोगी को ओषधि के साथ-साथ वैद्य कुछ पथ्य भी अवश्य बतलाता है। अपंग होने, धन की क्षति इत्यादि को हमें ईश्वर के बताये हुए वैद्यकीय नियम समझकर स्वीकार कर लेना चाहिए। पथ्य रुचिकर तो नहीं लगता किन्तु शरीर के लिए वह लाभदायक ही होता है। इसी तरह समष्टिरूपी शरीर के भले के लिए हमें कभी-कभी व्यक्तिगत कष्ट उठाने पड़ते हैं। अनेक शरीरों और असंख्य घटनाओं से इस संसाररूपी विराट् शरीर की रचना हुई है। इसलिए उसके आरोग्य के लिए तुम्हें कड़वे घूंट भी पीने पड़ें, तो खुशी-खुशी पियो।

सुख-दुखों को समान समझने के लिए दो कारण हैं। हर एक घटना तुम्हारे लिए पहले से ही निर्मित होती है। जिस कारण-कार्य-परम्परा से तुम्हारा जन्म हुआ है उसी से दुनिया की सभी चीज़ें उत्पन्न हुई हैं, उससे छूटना असंभव है।

समस्त ज़ीव-समुदाय के कल्याण के अर्थ एवं विश्व की प्रगति के लिए कुछ बातें ऐसी होती हैं जो तुम्हें

दुःखदाई प्रतीत होती हैं। तुम्हें उनसे असंतोष नहीं होना चाहिए। तुम उनसे भिन्न रहने की इच्छा मत करो। समष्टि से व्यष्टि का अलग होना, शरीर से किसी अंग की क्षति की भांति, विरूप मालूम देगा। यह प्रकृति-धर्म के विरुद्ध है।

४३. भूल से कभी मार्गच्युत हो जाओ तो भी निराश मत हो। सीधे मार्ग पर चलने का प्रयत्न कभी न छोड़ो। तुमने जो नेक जीवन बिताया उसे याद कर, अपने भाग्य को सराहते हुए, फिर से सही रास्ते पर आ जाओ। भूल कभी-कभी हो ही जाती है, उसे सुधार लेना चाहिए। आंख दुखने लगे तो उसमें दवा डालनी पड़ती है, घाव का इलाज होता ही है। सन्मार्ग पर चलते हुए ख़ुशी के साथ क़दम बढ़ाओ। तुम्हारी चाल उस बच्चे की तरह नहीं होनी चाहिए जो बड़ी अनिच्छा से पाठशाला की ओर जाता है।

मन में शांति लाने का एक-मात्र साधन सच्चा ज्ञान ही है। वही तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिए।

४४. जड़ तथा चेतन उपादान, जिनसे कि मैं निर्मित हुआ हूं, कभी एकदम मिटकर शून्य में परिणत नहीं हो जाते—संसार में सभी वस्तुओं का रूपान्तर होता रहता है। जिन्हें मैं 'मैं' कहकर पुकार रहा हूं वे शरीर और प्राण भी अन्य उपादानों से बने हुए हैं।

प्रलय और कल्पान्तर में भी यह नियम जारी रहेगा।

सब वस्तुओं के मार्ग नियत हैं। सब वस्तुएं अपने-अपने नियत मार्ग पर ही चलती हैं। हम उनको जैसे चाहें वैसे वदल नहीं सकते। सही रास्ते पर चलने को ही हम सन्मार्ग कहते हैं। उस रास्ते से भूलो-भटको नहीं। सीधे चलो। इसीको न्याय या धर्म कहते हैं।

किसी मनुष्य के पास धन-दौलत हो तो उसे उसकी निजी सम्पत्ति क्यों समझा जाय? सब वस्तुएं प्रकृति की अपनी होती हैं। उनसे मनुष्य का किस प्रकार का सम्वन्ध है? वस्तुओं पर अनुराग या आसक्ति न रखो। उनसे द्वेष करने की भी आवश्यकता नहीं। तुम्हारा भला या वुरा सांसारिक वस्तुओं से नहीं हो सकता। मन को तृष्णा-रहित रखो। धन की प्राप्ति पर अथवा उसका क्षय होने पर—चाहे तुमने जानबूझकर धन का त्याग किया हो या अन्य कारण से वह नष्ट हुआ हो—मन को साम्य अवस्था में रखो। जिस हद तक तुम तृष्णा-द्वेष-रहित हो उसी हद तक तुम मोक्ष के समीप हो।

४५. जिस रूप का तुम सतत ध्यान लगाये रहते हो उसी में तुम्हारा मन तदाकार हो जाता है। वस्त्र को जिस रंग में डुवाओगे वह उसी रंग का हो

जायगा। तुम्हारे मानसिक विचारों की छाया तुम्हारी आत्मा पर पड़े विना रह नहीं सकती। इसलिए सदैव अच्छे ही विचार रखो। हर हालत में, राजमहल में रहते हुए भी, मनुष्य नेक जीवन बिता सकता है। जिस चीज़ का जिन कारणों से निर्माण होता है उसका स्वभाव भी वैसा ही बन जाता है। उसकी भलाई भी उसी में हैं। जड़ वस्तु की अपेक्षा चेतन वस्तु अच्छी होती है। जीवधारी प्राणियों में जिन्हें ज्ञान है वे अपेक्षाकृत अधिक अच्छे माने जाते हैं। इसलिए मनुष्य को ज्ञानपूर्वक काम करना चाहिए। मनुष्य एक-दूसरे को सेवा करे और अपने जीवन को सार्थक बनाये। वह इसीलिए पैदा हुआ है।

४६. असंभव की आशा करना व्यर्थ है। दुर्जन अपने स्वभाव-विरुद्ध काम कैसे कर सकते हैं?

४७. किसी स्थूल वस्तु का प्रभाव आत्मा पर नहीं पड़ सकता। आत्मा के समीप उसकी पहुंच ही नहीं हो सकती। आत्मा को शक्ति और स्वतंत्रता स्वतः प्राप्त है। हमारे सत् या असत् विचारों का ही प्रभाव उसपर पड़ सकता है।

४८. मनुष्य जानता है कि क्या काम करना चाहिए और क्या नहीं। दूसरे का उपकार तथा सहिष्णुता-पूर्वक वर्ताव करना हरएक मनुष्य का कर्त्तव्य है। जब मनुष्य बुरा काम करता है, दूसरों के सत्कर्मों में विघ्न

डालता है, तब वह मनुष्यत्व को खो देता है। तब उस में और जड़ वस्तुओं में कोई भेद नहीं रहता। ऐसों पर क्रोध करना बेकार है। वे निर्जीव जो ठहरे? अपने कामों में विघ्न-बाधाएं नजर आयें तो निराश नहीं हूंगा, बल्कि दूसरे ढंग से काम करता रहूंगा। रुकावटों का सामना किये बिना कोई भी काम सफल नहीं हो सकता। प्रगति-पथ पर विघ्नों को हटा कर आगे बढ़ने की शक्ति आत्मा को प्राप्त है।

४९. दैवशक्ति की यही तो महिमा है कि वह जगत् की हरएक वस्तु से कोई-न-कोई काम निकाल लेती है। उस में सभी वस्तुओं का समावेश है। तुम में क्या विशेषता है? उस परमात्मा का अंश तुम्हारे अन्दर भी है, जिसके कारण तुम अपना यह भौतिक जीवन चला रहे हो।

५०. जो कार्य एक नगर के लिए लाभदायक हो, हानिकारक न हो, वह एक नागरिक के लिए भी, एक व्यक्ति के लिए भी, बुरा नहीं हो सकता। बुरा समझना भी नहीं चाहिए। किसी नागरिक के कार्य से सारे नगरवासियों को यदि कष्ट होता हो तो क्रुद्ध होने से पहले यह मालुम करो, इसकी जांच करो, कि उसने ऐसा कार्य क्यों किया?

कितने वेग के साथ इस दुनिया में सब कुछ उत्पन्न होता है और नष्ट भी हो जाता है। नदी

के प्रबल प्रवाह की भांति सब कुछ आंखों के सामने से गुजर जाता है। स्थिरता कहीं भी नहीं दीखती। अनंत अनादिकाल के विराट् मुख में सब कुछ पड़कर विलीन हो जाता है। हम यह नहीं जानते कि हमारे पीछे कितना समय निकल गया और आगे कितना निकलने को है। पल-भर के कष्ट को कष्ट समझना कितनी मूर्खता है !

५१. इस ब्रह्मांड में तुम एक अणु से भी छोटे हो। अनंत युग के लेखे तुम्हारे इस जीवन का समय ही क्या ? यदि तुम्हें इसका ज्ञान हो जाय कि जीवन में सुख और दुःख का कोई महत्व नहीं तो तुम्हारे मन में औदासीन्य और विराग अपनेआप आजायगा।

५२. किसी ने मुझे क्या नुकसान पहुंचाया ? उस आदमी को ही उनके काम से नुकसान हुआ है, मुझे कुछ नहीं। कोई अच्छा या बुरा विचार करे या भला-बुरा काम करे तो उस अच्छे-बुरे विचार या कार्य का असर उसी पर पड़ता है, दूसरों पर नहीं।

मेरी आत्मा जिस काम की प्रेरणा करती है वही मैं करता हूं। ईश्वर ने जो दिया वह मैंने पाया है। मेरा कोई क्या बिगाड़ सकता है ?

५३. देवताओं की श्रेणी में आ जाओ। तुम्हारे अन्दर जो दैवी अंश है वह तुम्हें सन्मार्ग की ओर ले जा रहा है, तुम्हारी रक्षा कर रहा है। जीवन

के सुख-दुःखों को प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार करो। परमात्मा पर भरोसा रखकर सब काम करो। इसी को तुम देवताओं का साथ समझो।

५४. एकता और सहिष्णुता ही विश्व-धर्म है। विश्व की छोटी-बड़ी समस्त सृष्टि इस प्रकार बनी है कि एक-दूसरे को सहयोग दे, एक-दूसरे के लिए उपयोगी हो। मनुष्यों को, जो उच्च सृष्टि के जीवधारी माने जाते हैं, चाहिए कि मिलजुलकर रहें, एकता सीखें।

५५. तुम अपने हृदय से प्रश्न करो कि देव, माता-पिता, गुरुजन, भाई-बहन, पत्नी, बच्चे, बन्धु-बान्धवों तथा सेवकजनों के साथ तुम्हारा व्यवहार कैसा रहता है? तुमने किसी पर कोई अन्याय तो नहीं किया? क्या सचमुच तुम बता सकते हो कि कभी अपने मुंह से तुमने कोई अपशब्द तो नहीं निकाले? जीवन की सारी बातों का स्मरण करो। तुमने कितनी सहिष्णुता दिखाई? सुख-दुःख को तुमने कहां तक समान रूप से देखा? उसमें कितनी बार हारे और कितनी बार सफल रहे? आशापाशों से कहांतक दूर रहे? कितनी बार तुमने बुराई के बदले भलाई करके अपना ऋण चुकाया? तुम्हारे जीवन की अब समाप्ति होनेवाली है। अपना सब लेखा-जोखा ठीक कर लो।

इंद्रियां जो-जो मांगती रहती हैं वह सब अस्थायी है। जीवित रहने का ध्येय क्या है? क्या तुम्हें नाम पाने की इच्छा है? अनित्यता और अज्ञान से पूरित इस संसार में कीर्त्ति लेकर क्या करोगे? खोजो, नाम कमाने से भी बढ़कर कोई चीज है या नहीं? मान लो कि मरने के बाद कुछ नहीं रहता। या, मानो दूसरा जन्म लेनेवाले हो। दोनों हालतों में तब तुम्हारे क्या कर्त्तव्य हैं? देवोपासना तथा मानव-जाति की सेवा-सहायता करना, सहिष्णुता दिखाना, अकर्त्तव्य कर्मों को न करना और इंद्रियनिग्रह ये मनुष्य के कर्त्तव्य या धर्म हैं।

५६. तुम यदि मन और कर्म से धर्म और न्याय के विरुद्ध न चलो तो फिर तुम्हारा मार्ग सरल है। आत्मशान्ति और आत्मतृप्ति के लिए स्थितप्रज्ञता से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं।

५७. क्या यह मैंने गलत किया? यह मेरी भूल का परिणाम तो नहीं है? इससे लोगों को कष्ट न पहुंचता हो तो मुझे चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं।

५८. अपना कर्त्तव्य-पालन करते हुए गर्मी और सर्दी की ओर ध्यान मत दो। पूरी नींद मिली या नहीं, इसकी चिन्ता छोड़ो। निन्दा-स्तुति की परवा न करो। प्राण-त्याग भी करना पड़े तो खुशी के साथ

करो। मरना भी एक कर्त्तव्य है। उसे भी ठीक तरह से करो।

सब बातों को अच्छी तरह से जांचो। हर चीज में कोई-न-कोई अच्छाई अवश्य होती है। साधारणतः उसकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता, लेकिन तुम वह गलती मत करो।

५९. बुराई का बदला इसी में है कि हम वैसा न करें जैसा कि बुराई करनेवाले ने किया।

६०. भगवान का सदा ध्यान करो। दूसरों का भला करो। दूसरों के हित के लिए जब एक काम पूरा हो जाय तब दूसरा शुरू कर दो। बुद्धिमत्ता के साथ काम करते रहने में ही जीवन में सुख, शांति और विश्रान्ति प्राप्त होती है।

६१. असन्तुष्ट क्यों हो? प्रकृति के स्वभाव-विरुद्ध कुछ भी नहीं हो सकता, समस्त वस्तुएं प्राकृतिक नियमों के अनुसार ही चलती हैं, अन्यथा नहीं।

६२. हो सकता है यह विश्व अणुओं के ऐक्य से अपनेआप बन गया हो। यह भी हो सकता है कि यह ब्रह्मांड किसी विधाता का रचा हुआ है और उसके आदेश से चल रहा है।

यदि तुम मानते हो कि दुनिया अपनेआप बन गई है, ईश्वर या विधाता का कोई अस्तित्व नहीं होता, तो मरने से क्यों डरते हो? जीवित रहने में तुम

क्या लाभ देखते हो ? तुम कुछ भी करो या न करो, शरीर का मिट जाना निश्चित है, अनिवार्य है। तब उसकी चिन्ता भी व्यर्थ है।

यदि तुम ईश्वर के अस्तित्व में श्रद्धा रखते हो, और मानते हो कि उसी ईश्वर ने जगत् के लिए कुछ नियम भी बनाये हैं, तो उसमें भक्ति-भाव रखो। चित्त में चंचलता को स्थान न दो।

६३. किसी घटना से तुम्हारा मन अशान्त हुआ हो तो जितना शीघ्र हो सके मन को शान्त और समाहित करो। इसमें विलंब न हो। इस बात का अभ्यास डाल लोगे तो चित्त बार-बार अशान्त नहीं होगा।

६४. यदि कोई मुझे समझाये कि मेरे अमुक कर्म और विचार अनुचित हैं, तो मुझे अपने विचारों और कर्मों को सुधार लेना चाहिए। मेरी भूल मुझे जो बताता है उसके प्रति मुझे कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए। मैं तो सत्य की खोज में हूं। सत्य कभी दुःखदायी नहीं हो सकता। जो सत्य को धिक्कारता है वह सदा अज्ञान में रहकर अपनेआपको ठगता है और दुःख पाता है।

६५. मुझे चाहिए कि अपने कर्त्तव्यों का पूरी तरह पालन करूं। अन्य विषयों पर मेरा ध्यान बिलकुल न जाय। मेरे कामों में दो प्रकार की रुकावटें

होती हैं—कुछ तो जड़ वस्तुओं से और कुछ उन आदमियों से जो समझदार होते हुए भी रास्ता भटक जाते हैं। ऐसे भी लोगों से मेरे कामों में रुकावटें आती हैं जिनमें बुद्धि का लेश भी नहीं होता, किन्तु ऐसे लोगों पर क्रोध करना अनुचित है।

६६. अचेतन वस्तुओं के प्रति और नासमझ प्राणियों के साथ भी तुम्हारा व्यवहार उदारता का रहना चाहिए। दूसरों को अपना सहयोग देते रहो। ईश्वर पर श्रद्धा-भक्ति रखकर हर एक काम या विचार करो। इस बात की चिन्ता न करो कि कबतक जीऊंगा। थोड़े समय भी अच्छा धार्मिक जीवन व्यतीत करना श्लाघ्य और पर्याप्त होता है।

६७. मृत्यु सम्राट् और साईस में कोई अन्तर नहीं देखती। सभी अन्त में सब के मूल कारण परमवस्तु में विलीन हो जाते हैं। अथवा शरीर जिन तत्त्वों के बने होते हैं उनमें सब फिर बिखर या बंट जाते हैं।

६८. यदि कोई पूछे कि तुम अपना नाम किस प्रकार लिखते हो तो उसे तुम अपने नाम 'मार्कस' का एक-एक अक्षर लिखकर बताओगे। उस अनपढ़ आदमी पर, जो तुमसे प्रश्न करता है, नाराज थोड़े ही हो जाओगे। उसी प्रकार काम करते समय कदापि दूसरों पर क्रोध या असहिष्णुता न दिखाओ। धीरज रखना बहुत ही आवश्यक है।

६९. आदमी जब स्वेच्छा से काम करता है तब वह अपना आराम और फायदा देखकर जैसा उसे ठीक लगता है वैसा करता है । उसमें दखल देने का तुम्हें अधिकार नहीं। और न तुम उसकी किसी गलती पर क्रोध कर सकते हो। यह हो सकता है कि स्वार्थ को देखकर वह जो काम करता है वह अनुचित और दोषयुक्त हो। उस हालत में उसे शान्ति से उसकी गलती समझा दो ।

कठपुतली के खेल में नचानेवाला जैसे-जैसे नचाता ह पुतलियां वैसे ही नाचती हैं। हमें भी इसी तरह हमारी वासनाएं नचाती रहती हैं । मन को रोका नहीं जाता । शरीर के पोषण के लिए सदा कुछ-न-कुछ करते रहना पड़ रहा है। इन सब मुसीबतों से छूटने को मरण कहते हैं ।

ऐसा समझकर कि तुम्हारी आत्मा सम्राट् की आत्मा है, उसे अधिक महत्त्व न दो । मामूली आदमी से अपने को अलग न समझो। मनुष्यत्व को मत गंवाओ । स्वाभिमान के साथ अच्छे मार्ग पर स्थिर रहो। न्याय और ईश्वर का डर तुम्हारे मन में रहे। प्रजा पर स्नेह दिखाओ । कर्त्तव्यों का पालन धैर्य के साथ करो । धर्मग्रंथों में निर्दिष्ट नियमों को अपने आचरण में लाओ । मनुष्य का जीवन अल्पकालिक है। जीवन की सफलता सबके

साथ मिलजुलकर रहने तथा धर्मयुक्त मार्ग पर चलने में ही है। सब कामों में तुम अपने पिता अंतोनियस का अनुसरण करो। वह अपने सिद्धांत के विरुद्ध कोई काम नहीं करते थे। मन को सदा राग-द्वेष-रहित रखते थे। उनके चेहरे पर सदा शान्ति का तेज रहता था और मुंह से मीठी वाणी ही निकलती थी। दूसरों की प्रशंसा पाने के लिए उन्होंने कभी कोई अवांछनीय काम नहीं किया। राजकीय विषयों में उन्होंने कभी असावधानी नहीं दिखाई। मामूली बातों को भी वह कभी पूरी तरह जांचे या समझे बिना नहीं छोड़ते थे। उनके ऊपर कोई गलत दोषारोप करता तो भी चुपचाप सह लेते थे। चुगलखोर लोगों पर वह कभी विश्वास नहीं करते थे। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से वह लोगों के स्वभाव को पहचान लेते थे। कितनी निर्भयता थी उनमें! झूठमूठ संदेह करना, दूसरों पर दोष लगाना, वह जानते ही नहीं थे। व्यर्थ तर्क-वितर्क या विद्वत्ता का आडम्बर रचना उन्हें पसन्द नहीं था। उनके रहन-सहन, खान-पान में कितनी सादगी थी! काम करते हुए कभी वह थकते नहीं थे। मित्रों तथा दूसरों के भी साथ उनका व्यवहार सदा स्नेहपूर्ण होता था। उन्हें यदि कोई अच्छी जानकारी की बात बताता तो उसे वह खुशी और नम्रता के साथ सुन लेते

थे। मतभेद या अपनी निंदा के प्रति भी उनका व्यवहार अतीव सहिष्णुता का रहता था। कितनी ईश्वरभक्ति और श्रद्धा थी उनमें! मूर्खों की भांति वह भूत-प्रेतों पर अन्धविश्वास नहीं करते थे। जीवन में सदा तुम अपने उन्हीं पितृदेव का उदाहरण सामने रखो।

७०. शरीर अकेला कुछ नहीं कर सकता। जब मन का भी साथ हो तभी वह कुछ कर पाता है। सुख-दुःख का अनुभव भी तभी उसे होता है। मन स्वच्छन्द है। जैसा चाहे वैसा अपने को बना लेता है। भूत और भविष्य की बातों का मन पर विशेष असर नहीं पड़ सकता। तात्कालिक बातों का ही महत्व है।

७१. यूरोप और एशिया दोनों का इस ब्रह्मांड में कितना छोटा हिस्सा है। महासमुद्रों का सारा पानी ब्रह्मांड में एक बूंद के बराबर है। अनादि, अनंत काल के मध्य में हमारा यह समय कितना क्षुद्र, कितना अल्प है! एक छोटी-सी बिन्दी के बराबर है—जिसकी लम्बाई है न चौड़ाई।

७२. इस संसार की सब जड़-चेतन वस्तुएं, हर प्रकार के दुष्ट और सौम्य प्राणी, एक ही परमात्मा से निकले हैं। इसलिए सब को समभाव से देखो। न किसी से राग करो, न किसी से द्वेष। उसी

परमवस्तु का ध्यान करो, जो सबका मूलभूत कारण है।

ज़रा सोचो तो तुमको प्रतीत होगा कि हर एक छोटी-बड़ी वस्तु एक-दूसरे के साथ सम्बन्ध रखती है।

७३. जब हम कोई औज़ार बनाते हैं तो अपनी समझ और शक्ति के अनुसार उसे काम के लायक़ बनाकर रख लेते हैं। औज़ार या शस्त्र अपने नियत कार्य में लगा रहता है। प्रकृति की वस्तुएं इससे भिन्न हैं। जिस शक्ति ने उसे बनाया वही शक्ति उसके अंदर छिपी हुई उसे सजीव रखती है। उस अंतर्निहित पराशक्ति को सहयोग दोगे तो वह तुमसे जो काम चाहती है उसे करा लेगी।

७४. हर्ष और शोक वास्तव में मन की स्थितियां हैं और मन को वश में रखना तुम्हारे अपने हाथ में है। इस बात को समझना बहुत आवश्यक है, क्योंकि अपने सुख-दुःख का कारण यदि तुम किसी बाहरी व्यक्ति को मान लोगे तो उससे तुम द्वेष करने लगोगे और संभवतः ईश्वर पर भी दोषारोप करोगे।

७५. संसार में सभी लोग परिश्रम करते हैं। कुछ तो कर्त्तव्य समझकर करते हैं और कुछ जानते भी नहीं कि वे कुछ करते हैं, तो भी परिश्रम किये बिना नहीं रहते। अचेत अवस्था में सोता हुआ मनुष्य

भी कर्म किये बिना नहीं रहता। संसाररूपी इस सामूहिक संस्था में सभी अपने-अपने ढंग से कुछ-न-कुछ करते ही रहते हैं। जो इस संस्था के विरुद्ध जाते हैं, इसे नष्ट करना चाहते हैं, उनकी भी ज़रूरत रहती है। दूसरे लोग सहयोग देकर इस सस्था की सेवा करते हैं तो वे विरोध प्रदर्शित करके सेवा करते हैं। पराशक्ति, जो सबपर शासन करती है, हर एक प्राणी को अपने कामों में साधनरूप बना लेती है। तुम किस प्रकार के साधन बनना चाहते हो? विरोध करके सेवा करोगे या सहयोग देकर?

७६. सदा अपने स्वार्थ की चिन्ता में रहकर ईश्वर पर अविश्वास मत किया करो। वह तुम्हारा ध्यान रखता है या नहीं, इसकी चिन्ता छोड़ो। वह सर्वज्ञ है। जो समष्टि के लिए अच्छा होगा उसे ईश्वर अवश्य करेगा। समष्टि की भलाई के लिए किसी भी कष्ट को शिरोधार्य करो।

७७. ईश्वर पर तुम्हारी श्रद्धा न हो तो भी इस बात को अवश्य सोचो कि तुम्हारी भलाई किस बात में है? तुम्हारा स्वाभाविक धर्म क्या है? क्या कर्म कर्त्तव्य है और क्या अकर्त्तव्य, इसका विचार करना और समझना तुम्हारा धर्म है। मार्कस, यों तुम्हारा अपना गांव रोम नगरी है, किन्तु वास्तव में तो संसार ही तुम्हारा देश है। जो रोम नगरी और संसार

के लिए हितकर हो सकता है वही तुम्हारे लिए भी ठीक है।

७८. ज़रा सोचो, आजतक कितने लोग, कितनी जातियों के, तरह-तरह के कितने कारीगर मर गये और मरकर चिन्तामुक्त हो गये हैं? उनके मर जाने से किसे किस कष्ट का अनुभव हो रहा है? उन लोगों का, जो चल बसे हैं, आज नाम तक किसी को याद नहीं। जो यहां से कूच कर गये उन्हें भी कोई कष्ट कैसे हुआ होगा? संसार में सत्य और राग-द्वेष-रहित जीवन बिताने में ही तुम्हारा गौरव है। जो असत्यवादी और अत्याचारी हों उनके साथ भी तुम प्रेमपूर्ण व्यवहार करो। इस तरह का नेक जीवन बिताने पर तुम्हें मृत्यु की चिन्ता होनी ही क्यों चाहिए?

७९. जो ग़लत रास्ते पर जाते हों उन्हें उनकी त्रुटियां समझाओ। उन्हें सुधारने का प्रयत्न करो। यदि वे अनुचित मांगें रखें तो उन मांगों को मत मानो। यदि लोग तुम्हारी आज्ञाओं का पालन ठीक तरह से न करें और अपनी शक्ति को तुम्हारे विरुद्ध काम में लायें तो चिन्ताकुल मत बनो। मन को शान्त रखो। लोग यदि तुम्हारे कामों में विघ्न डालते रहते हैं, तो उन विघ्नों को अपने मन को दृढ बनाने के साधनरूप समझो। जो काम अशक्य है वह तुम कर नहीं

सकोगे। किन्तु फिर भी पुरुषार्थ करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। पुरुषार्थ को ही कार्य की सफलता समझो।

८०. तुम चाहो तो किसी भी विचार को मन में प्रवेश करने से रोक सकते हो। हमारी इच्छा के विरुद्ध बाह्य विचार हमारे अन्दर प्रवेश नहीं कर सकते। मन-रूपी क़िले की कुंजी हमारे ही हाथ में है।

८१. शहद की मक्खियों को देखो। अपने समूह के लिए जो चीज़ लाभदायक नहीं है उसकी ओर शहद की मक्खी कभी नहीं जायगी।

८२. जिस आदमी को पीलिया रोग हो गया है उसे शहद भी कड़वा लगेगा। जिसे पागल कुत्ते ने काटा है वह पानी के पास जाने से भी डरेगा। रोग-पीड़ितों की इन अस्वाभाविक अवस्थाओं पर हम क्रोध कैसे कर सकते हैं? पीलिया-ग्रस्त मनुष्य के पित्त के विष की अपेक्षा अज्ञानरूपी विष के वेग को कम मत समझो। मनुष्य बुरे रास्ते पर अज्ञान के कारण ही चलता है। उसपर क्रोध करना अनुचित है।

८३. प्राकृतिक धर्म के विरुद्ध कोई कुछ नहीं कर सकता। इसलिए अपने भाग्य पर उदास मत हो। हर हालत में अपने कर्त्तव्य-कर्म करते रहो। मन की स्थिरता को मत जाने दो। मन पर अंकुश रखने में ही आनन्द है।

८४. किसी भी काम को करने से पहले अच्छी तरह सोच़ लो कि तुम से वह हो सकेगा या नहीं। तुम्हारे अन्दर जो शक्ति है उसे ईश्वर की दी हुई समझो। जो काम तुम्हारी अपनी शक्ति से बाहर है उसे किसी दूसरे योग्य आदमी से कराओ। हां, न्याय के विरुद्ध कोई भी काम न हो। अपनी बुद्धि से, दूसरों की मदद से, अकेले या किसीके साथ मिलकर जो भी काम करो वह जगत् के लिए हितकर हो।

८५. भविष्य की चिन्ता मत करो। जो बुद्धि तुम में अब है वही भविष्य में भी काम देगी। पहले से ही चिन्ता में डूबने की आवश्यकता नहीं।

८६-८९. जगत् की सभी वस्तुओं में, सभी प्राणियों में, एक दैवी सम्बन्ध है। इस समष्टि का तुम एक अंशमात्र हो। पृथक् जैसी कोई चीज़ है ही नहीं। एक ही नियम है। मनुष्यवर्गरूपी विराट् शरीर के तुम एक अंग-मात्र हो। जब किसीपर तुम उपकार करते हो तब समझो कि वह उपकार तुम अपने ही लिए कर रहे हो। विवेकी मनुष्य बुद्धिपूर्वक जो काम करता है उन में और स्वाभाविक ढंग से जो काम उससे होते हैं उन में कोई अन्तर नहीं रहता। तुम चाहो तो मन को किसी भी अवस्था में स्थिर रख सकते हो। कष्ट तो केवल शारीरिक होते हैं। मन तो स्वतन्त्र है। मन पर उद्वेगों की विजय मत होने दो।

९०. कोई कुछ भी कहे या करे, मेरा काम तो हमेशा अच्छा ही रहना चाहिए। किसी के अच्छा या बुरा कहने से माणिक और सुवर्ण की चमक में कभी कोई फ़र्क नहीं पड़ सकता।

९१. अति शीघ्र सब कुछ छोड़-छाड़कर तुम यहां से चले जाओगे, अथवा सब तुम्हें छोड़कर चले जायंगे, यह निश्चय है।

९२. जो तुम्हारा अहित करता है उससे भी प्रेम करना तुम्हारा धर्म है। अज्ञानवश लोग बुरा काम करते हैं। थोड़े दिनों बाद न तो तुम रहोगे और न वे लोग। जबतक कोई तुम्हारे मन को कलुषित नहीं करता, तुम्हारा बुरा हो नहीं सकता। अपने अच्छे गुणों को न बिगड़ने देना तुम्हारे अपने हाथ में है। इसलिए सभी से प्रेम करो। यह कुछ कठिन नहीं।

९३. हम लोग मोम से जैसी चाहते हैं उसी तरह की मूर्त्तियां बना लेते हैं। प्रकृति भी भांति-भांति की वस्तुएं बनाती रहती है, बिगाड़ देती है और फिर बिगड़ी चीज़ों से नई-नई रचना करती रहती है। अभी घोड़ा बना, बाद को उसकी जगह पर एक पेड़ उग आता है। पेड़ फिर मनुष्य के रूप में परिवर्त्तित हो जाता है। सबका काल अल्प होता है। लकड़ी से एक पेटी बनाई जाती है। वह

पुरानी हो जाती है तो उसे चीरकर लकड़ी के टुकड़े कर देते हैं। पेटी चुप रहती है। अपने परिवर्त्तन पर वह न हर्ष प्रकट करती है, न शोक। तुम भी मृत्यु के निकट आने पर चिन्ता मत करो। उदासीन रहो। यही परमज्ञान है।

९४. जब कोई अपराध करे तो सोचो कि उसने ऐसा क्यों किया ? किस चीज़ को पाने की इच्छा से, किस चीज़ से बचने के लिए, उसने ऐसा किया ? सोचने पर तुम्हें उस मनुष्य पर क्रोध के बदले दया ही आयगी। अपराधी जो अपने लिए चाहता है वही तुम भी अपने लिए पाने की इच्छा करते हो। इसलिए उसे क्षमा कर देना तुम्हारा धर्म है। शायद तुम में सच्चा ज्ञान हो। तुम्हें यह समझ हो सकती है कि अमुक वस्तु वांछनीय है या नहीं, असली है या नक़ली, अमुक वस्तु सचमुच में दुःखदायी नहीं है; किन्तु उस बेचारे को ज्ञान नहीं है। अतः उसपर दया-भाव ही दिखाओ।

९५. जो चीज़ तुम्हारे पास नहीं है उसे पाने की तीव्र इच्छा मत करो। तुम्हारे पास जो कुछ है उससे संतुष्ट रहो। यह सोचो तो सही कि जो चीजें तुम्हारे पास हैं वे यदि न होतीं तो उन्हें पाने के लिए तुम कितना अधिक प्रयत्न करते। एक चेतावनी देता हूं। तुम अपने पास की चीज़ों पर भी बेहद मोह

मत रखो, अन्यथा यदि उन्हें कभी खोना पड़े तो तुम्हें अत्यन्त दुःख होगा।

९६. इन्द्रियों को वश में रखकर ईश्वर-चिन्तन करो। समाधिस्थ मन को ईश्वर-चिन्तन से संतोष होगा।

९७. मृत्यु क्या है? यदि शरीर के उपरान्त प्राण जैसी कोई चीज़ नहीं है, तो जिन अणुओं के समुच्चय से शरीर बना है उनके फिर अलग-अलग हो जाने को मृत्यु कहते हैं। यदि जिसे हम प्राण या जीव कहते हैं वह सचमुच में हो, तो वह किसी अन्य शरीर में जायगा; अथवा मान लो जीव का अस्तित्व भी समाप्त हो जायगा, तो भी क्या हुआ? उससे हानि क्या?

९८. रोग क्या चीज है? जब रोग सहा नहीं जाता तो हम मर जाते हैं; मरने से रोगमुक्त हो जाते हैं। यदि मन को वश में रखो तो रोग का असर आत्मा पर नहीं पड़ सकता। उस अवस्था में तुम्हें शांति मिलेगी। मन से अलग होकर शरीर जड़वत् हो जाता है।

९९. बुद्धिमान मनुष्य, जिस अनन्त काल और प्रकृति का ज्ञान है, मनुष्य के जीवन-काल को अधिक महत्व नहीं देगा। वह मरने से शोक नहीं करेगा।

१००. निंदा के पात्र बनना और परोपकार करना ये दोनों राजसत्ता चलानेवालों के लिए बड़े भाग्य की बातें हैं।

१०१. शारीरिक बल में भले ही तुम्हें कोई जीत ले, किन्तु शील, विनय, सहिष्णुता और अक्रोध में तुम्हें किसी से नहीं हारना चाहिए।

१०२. इन्द्रियों का ध्यान अपने हृदय के अन्दर, आत्मा की ओर, लगाओ। तुम्हारा अन्तःकरण उस झरने की तरह है जिसका पानी कभी सूखता ही नहीं। जितना ही गहरे उतरोगे उतना ही लाभ होगा।

१०३. ज़रा सोचो तो, जिनकी मीठी-मीठी सराहनाएं तुम्हें बहुत भाती हैं, वे कैसे लोग हैं? उनमें बुद्धि कितनी है? मनुष्य के सभी विचार और कार्य उसकी बुद्धि के अनुसार होते हैं। दूसरे तुम्हारी निन्दा करें तो उसकी भी परवा मत करो। वे जब कोई अनुचित काम करते हैं तब अनिच्छा से ही करते हैं। उनकी गलतियों को क्षमा करो। यह भी न चाहो कि तुम्हारी सदा प्रशंसा ही होती रहे।

१०४. सत्य को अथवा न्याय या प्रेम को छोड़कर असत्य के रास्ते कोई खुशी-खुशी नहीं जाता। यह याद रखोगे तो अपराध करनेवाले तुमपर दया-भाव अवश्य करेंगे।

१०५. बुरे कर्मों से अपने को बचाना तुम्हारे ही हाथ में है। दूसरों को वैसे रास्ते से बचाना तुम्हारे हाथ में नहीं है। तो भी, जो काम तुम से हो सकता

है वह न करके तुम अशक्य काम करने जा रहे हो। कैसी विचित्र बात है !

१०६. सेवा करके नाम कमाना या सेवा के बदले में सेवा पाने की इच्छा करना मूर्खता है। तुम्हारी दी हुई सेवा और दूसरों द्वारा उस सेवा की प्राप्ति, यही दो महत्व की वस्तुएं हैं। इसके उपरान्त किसी तीसरी वस्तु की खोज में मत रहो।

१०७. तुम्हारी सेवा दूसरों को पहुंचे इसी में तुम भी सेवा पा लेते हो। सेवा पाने से कोई थकान नहीं। सेवा करना सेवा पाने के बराबर ही है। इसलिए उस से थको ही क्यों ?

१०८. जिस पराशक्ति ने जगत् को रचा है उसने हर एक वस्तु को नियमबद्ध कर दिया है। जो भी घटनाएं घटित होती हैं, वे उस निर्माण की भलाई के लिए ही होती हैं। इसलिए चिन्ता मत करो। कुछ दिन बाद तुम भी, अपने पूर्वजों की तरह, इस दुनिया से चल बसोगे। इसे ध्यान में रखकर सावधानी से हर एक काम करो। परहित में निरत रहना ही मनुष्यमात्र का स्वाभाविक धर्म है। अधर्म-मार्ग पर भूलकर भी न जाओ। वाणी भी तुम्हारी न्याय-पूर्ण रहे। उसमें अविनय और मिथ्याचार कभी न आने दो।

१०९. धर्म-मार्ग पर अटल रहनेवाला सदा प्रसन्न रहता है। असत्य और शंकाशील विचारों को मन में बिलकुल मत आने दो। दूसरों की भलाई करने में रत, राग-द्वेषों से रहित, सुख-दुःख के प्रति समता रखने वाला मनुष्य ही धर्म-पथ पर अटल रहता है।

११०. एक पेड़ है और उसका एक पत्ता है। अपने पोषण के लिए जो कुछ चाहिए वह पत्ते को पेड़ से मिल जाता है। तुम भी परमात्मा रूपी पेड़ के एक पत्ते ही हो। परमात्मा तुम्हारी रक्षा कर रहा है। उसकी शक्ति, उसका न्याय और ज्ञान अपार है। सब जीवों को वह आवश्यकतानुसार आयु एवं सामर्थ्य देता है। अलग-अलग देखने पर वे किसी में कम या किसी में अधिक दिखाई देते हैं। किन्तु एक साथ, एक दृष्टि से देखा जाय तो सब समान रूप में ही दीखते हैं।

१११. हो सकता है कि तुम बहुत अधिक कामों में व्यस्त हो। काम अथवा अन्य कारणों से तुम्हें पुस्तक पढ़ने का अवकाश नहीं मिल रहा हो। किन्तु दूसरों के प्रति अच्छा बर्त्ताव करने में, या बुरा बर्त्ताव न करने में, तुम्हें कौन-सी रुकावट है? मन को स्थिर रखने की आदत डालो। इसके लिए तुम्हारे पास काफी समय है। मूर्ख और अकृतज्ञ लोगों पर क्रोध न करने के लिए और उनके कामों पर ध्यान न देने के लिए पुस्तकों की आवश्यकता नहीं होती।

११२. यह मत सोचो कि मरने के बाद तुम दुनिया को एकदम छोड़कर चले जाओगे। किसी दूसरे रूप में तुम फिर पैदा होगे। जिन वस्तुओं से तुम्हारा शरीर वना उनका ह्रास हो जाता है, वे फिर एकत्र हो कर किसी अन्य रूप में प्रकट होती हैं। इसे रोकना तुम्हारे बस का नहीं।

११३. मेरे सब काम लोकहित के लिए हों। हर वात को मैं परमपिता का आदेश समझूं और उसे स्वीकार करूं।

११४. कर्मरूपी साधनों को जोड़कर तुम जीवनरूपी इमारत खड़ी कर रहे हो। तुम्हारे साधन अर्थात् तुम्हारे सब कर्म अच्छे होने चाहिए। तुम कह सकते हो कि अच्छे काम करने में वहुत विघ्न आते हैं। मत करो उनकी परवा। विघ्नों को देखकर घवराओ नहीं। उन्हें वातारण में रहनेवाली अचेतन वस्तुएं समझो और दृढ़ता के साथ काम किये जाओ। विघ्नों के कारण तुम्हारा काम एकदम रुक भी जाय तो तुम्हारे योग्य कोई दूसरा काम तुम्हारे सामने आ जायगा।

११५. प्रकृति के नियम के अनुसार जो घटनाएं घटती हैं उनपर शोक करना या जगत् की भलाई के विरुद्ध चलना ठीक नहीं। अपने आचरण से अपनेआप को संसार से पृथक् मत करो। संसाररूपी महान

शरीर के तुम एक अंग हो। उस अंग को तुम काट डालना चाहते हो? कोई भी चीज़ कट जाय तो फ़िर वैसी जुड़ती नहीं। किन्तु तुम दुनिया से कट भी जाओ, तो भी चाहो तो जुड़ सकते हो। यह दैवी शक्ति भगवान ने मनुष्यमात्र को प्रदान की है।

११६. मैं कहीं भी जाऊं, कहीं भी रहूं, मेरा अन्तर्यामी मुझे त्याग नहीं देगा। उसकी सहायता से मैं स्वधर्म का पालन करता रहूंगा। मेरे चित्त में शांति की कमी नहीं होगी। इस बात को न समझ, विपत्ति को देखकर, क्या मैं व्याकुल और पागल बन जाऊं? यह कैसी बात है? सबसे उत्तम मन को स्थिर रखना ही है।

११७. ककड़ी कड़वी निकल आई, तो उसे फेंक दो। राह में कांटे हैं, तो उनसे बचकर चलो। इस विचार में न पड़ जाओ कि यह ककड़ी कड़वी क्यों पैदा हुई या दुनिया में कांटे किस वास्ते हैं? बढ़ईखाने में या चर्मालय में जाओगे तो कूड़ा-कचरा इधर-उधर नज़र आयगा। उसपर तुम चिढ़ोगे तो लोग तुम्हारी हंसी उड़ायेंगे। बढ़ई कूड़ा-कचरा और भी कहीं डाल सकता है, किन्तु दुनिया की निकम्मी चीजों को फेंकने के लिए दुनिया के बाहर कहां जगह मिलेगी? प्रकृति की यह आश्चर्यजनक शक्ति है कि निकम्मी समझी जानेवाली वस्तु से भी वह कोई-न-कोई नई उत्पत्ति,

नया काम, निकाल लेती है। वह कभी नहीं कहती कि इसके लिए यहां स्थान नहीं, इसमें कार्यकुशलता नहीं, या साधनों की कमी है। उसके पास हर एक चीज़ के लिए स्थान है। वहां हर एक वस्तु उपयोगी है।

११८. प्रकृति में जो पारस्परिक सहयोग सदा रहता है उसे न जाननेवाला मूर्ख होता है। जो नहीं समझता कि प्रकृति के नियम के अनुसार अपना धर्म क्या होता है, वह न अपने को समझ पाया है न प्रकृति को।

११९. प्राणवायु सर्वत्र फैला हुआ है। उससे श्वास लेकर हम जी रहे हैं। किन्तु मनुष्य के लिए यह काफ़ी नहीं। सर्वव्यापी परमात्मा का भी अनुभव करना चाहिए।

१२०. मेरा प्राण, शरीर और हृदय तथा दूसरे का प्राण, शरीर और हृदय अलग-अलग हैं। यद्यपि हम सब एक साथ रहते हैं, तथापि हर एक मनुष्य को अलग स्वतन्त्र विचार रखने का अधिकार है। इसी कारण जो जैसा काम करता है उसके अनुसार उसे ही अच्छाई या बुराई मिलती है, न कि मुझे।

१२१. सब जगह फैलने के कारण सूर्य का प्रकाश कुछ कम नहीं हो जाता। अंधेरे कमरे में तुम एक छिद्र के द्वारा प्रकाश को देख सकते हो। वह सीधे सब

जगह पहुंचता है। जो चीज़ उसे रोकती है उस चीज़ पर सूर्य अपना प्रकाश फेंकता है। वहां से वह हट नहीं जाता। तुम्हारे आचरण और विचार भी ऐसे ही होने चाहिए। अच्छे, अविचल विचार रखो। सीधे चलो। सूर्य की किरणों की तरह रुकावटों पर भी अपने अच्छे विचारों का असर पड़ने दो। ज़बर्दस्ती और क्रूरता को कभी तुम्हारे अन्दर स्थान नहीं मिलना चाहिए।

१२२. जो मृत्यु से डरता है, वह आखिर डरता किस चीज़ से है? क्या शरीर की चेतनाशक्ति के नष्ट हो जाने से? अथवा वह नये जीवन और नई भावनाओं से घबराता है? जब चेतनाशक्ति चली जाती है, तो दुःख किस बात का? नये जीवन और नये अनुभव से हानि कैसे हो सकती है? नवीनता को मृत्यु कैसे कहा जाय?

१२३. हम एक-दूसरे का काम करते रहें इसीलिए परमात्मा ने पैदा किया है। अतः दूसरों की त्रुटियों को हमें सुधारना चाहिए। एक-दूसरे के प्रति सहिष्णुता दिखानी चाहिए।

१२४. हम सब को मिलजुलकर रहना चाहिए। हम कभी अधर्म-पथ पर न जायं। किसी का बुरा न चाहें। जो अधर्म-पथ पर चलता है, वह चाहे कितने ही देवताओं की उपासना करनेवाला हो, सर्वेश्वर

का भक्त नहीं कहा जा सकता। वह झूठा और कृतघ्न ही समझा जायगा। जो असत्य बोलता है वह भी ईश्वरद्रोही है। सत्य ही परमेश्वर है। सारा ब्रह्मांड ईश्वर के नियम से चलता है। सब वस्तुएं एक-दूसरे से बंधी हुई हैं। असत्य व्यवहार ईश्वरीय सृष्टि के विरुद्ध है। अनिच्छा से भी कोई झूठ बोले तो भी वह अपराधी ही है। झूठ बोलना प्रकृति के नियमानुसार अस्वाभाविक है। झूठ बोलनेवाला, समझ होने पर भी, बुद्धि की उपेक्षा करके मूर्ख बन ईश्वरीय न्याय के विरुद्ध चलता है।

जो सदा भोग-विलास को चाहता है, कष्ट से सदा बचना चाहता है, उसमें ईश्वर के प्रति भक्ति कैसे हो सकती है? लोग जब देखते हैं कि सन्तजन कष्ट भोगते हैं और दुष्टजन हर तरह के आराम के साथ जीवन बिताते हैं, तो ईश्वर को अपराधी ठहराने लगते हैं। यह मूर्खता है। जो दुःख से डरता है, वह अनिवार्य वस्तु से डरता है। जो सदा ऐहिक सुख की तृष्णा करता है वह पाप करने से नहीं चूकेगा। ईश्वर का जो सच्चा भक्त है वह समझता है कि संसार में जहां सुख है वहां दुःख भी है। हर्ष-शोक, जन्म-मरण, निन्दा-स्तुति इन द्वन्द्वों के प्रति वह मन को सदा स्थिर रखेगा। ये द्वन्द्व बारी-बारी से संसार-चक्र में आते रहते हैं। इनकी शक्ति

की भी सीमा होती है। हर एक को इसका अनुभव करना ही पड़ता है। इसमें अच्छे-बुरे का अर्थात् व्यक्तिगत पक्षपात नहीं होता।

१२५. ईश्वरीय न्याय से मरण निश्चित है। उससे डरो नहीं। बाल्यावस्था के वाद युवावस्था का आना जैसे स्वाभाविक है, वैसे ही अंततोगत्वा मरण भी स्वाभाविक है। इसलिए समझदार आदमी मृत्यु से डरता नहीं। उसकी उपेक्षा भी नहीं करता। वह तो मृत्यु के आगमन की राह देखता रहेगा। मा के पेट से शिशु के वाहर निकलने की जैसी प्रतीक्षा की जाती है, उसी तरह शरीर से आत्मा के छूट जाने का भी समय देखते रहो। एक और भी कारण है जिससे तुम मृत्यु का हृदय से स्वागत कर सकते हो। किसी से द्वेष न करो, सहनशील वनकर रहो; यह ठीक है, किन्तु तुम में और तुम्हारे आस-पास के लोगों में कितना मतभेद है! उनकी संगति से छूट जाना अवश्य तुम्हारे लिए आनन्दप्रद होगा। जवतक लोग तुम्हारे जैसे ही विचारोंवाले हैं, तुम्हारा और उनका मन मिला रहता है, तवतक उनके साथ रहना अच्छा लग सकता है। किन्तु अपने से विल्कुल विपरीत विचारवालों के साथ जीवन विताना वहुत ही कठिन है। जितनी शीघ्रता से हो सके उनसे अलग हो जाना ही अच्छा है; क्योंकि

यदि मैं अधिक दिन ऐसी संगति में रहूं तो कौन जाने मैं भी कहीं वैसा ही न बन जाऊं !

१२६. जो दूसरों के प्रति अन्याय करता है वह अपना ही बुरा करता है। जो बुरे रास्ते पर चलता है वह अपने स्वभाव को बिगाड़कर अपने ही प्रति अन्याय करता है।

१२७. मन में ज्ञानपूर्वक शुद्ध विचार रखना, परोपकार में रत रहना, अतीत के लिए शोक और भविष्य की चिन्ता न करना—इतनी साधना यदि तुम्हारे अन्दर हो तो फिर और क्या चाहिए ?

१२८. सब प्राणी एक ही वायु, एक ही प्रकाश, एक ही पृथ्वी पर आधार रखते हैं। एक ही महाप्राण के अनेक टुकड़े बन गये हैं। इस बात को सोचने से यही मालूम होता है कि मनुष्यों की आत्माएं परमात्मा का ही अंश हैं।

१२९. प्रकृति की सभी वस्तुएं जिस वर्ग से निकली हैं अन्त में उसी में मिल जाती हैं। बन्धन के छूटने पर पृथ्वी से जो वस्तुएं बनी हैं वे पृथ्वी में, जल से जो बनी हैं वे जल में और वायु से बनी वस्तुएं वायु में मिल जाती हैं। जो वस्तुएं बुद्धि के साथ संबध रखती हैं वे एकत्र हो जाती हैं। जो चीज़ जितनी सूक्ष्म रहती है उसकी गति उतनी ही प्रबल होती है। दृढ़ पदार्थ से द्रव पदार्थ की तथा द्रव से वायु

की शक्ति अधिक तेज़ होती है। जीव-समुदाय को ही देखो। उनमें एक सामूहिक भावना रहती है, जो कि जड़ या अचेतन वस्तुओं में नहीं पाई जाती। छोटे-छोटे कीड़े, पशु और पक्षी हमेशा बड़ी संख्या में एक साथ रहते हैं। उनमें भी कौटुंबिक जीवन और स्वाभाविक प्रेम पाया जाता है। मनुष्य, जिसकी बुद्धि सब प्राणियों से अधिक है, अपने लिए राष्ट्र या देश, घर, स्नेहीजन, गार्हस्थ्य जीवन यह सब बना लेता है। कभी युद्ध भी करे, तब भी संधि की आशा नहीं छोड़ता।

और आकाश के नक्षत्रगण को देखो। एक-दूसरे से बहुत दूर रहते हुए भी परस्पर बंधे हुए हैं।

मनुष्य जब लड़ते हैं तब अपने स्वभाव के विरुद्ध चलते हैं। जबतक वे लड़ते रहते हैं, तबतक प्रकृति के नियम में रुकावट आती है। किन्तु यह बहुत देर तक नहीं चल सकता। प्रकृति के विरुद्ध जाने का प्रयत्न सफल नहीं हो सकता।

१३०. कभी कोई दुःख झेलना पड़े, तो दीन मत बनो। दूसरों की दया की आशा न करो। खुशामद मत चाहो। बुद्धिपूर्वक खूब सोचो और देखो कि तुम्हें क्या करना चाहिए और किस चीज से दूर रहना चाहिए। जो भी काम करो, परहित ध्यान में रखो।

१३१. इस बात की खुशी न मनाओ कि हम आज विपत्ति से बच गये। विपत्तियां बाहर से नहीं आतीं। मन को स्थिर रखना ही संकटों से बचना है।

१३२. बाहर की ओर देखना छोड़कर अपने अंतःकरण को देखो। शान्ति पाने का यही एक मार्ग है। प्रकृति का स्वभाव और रहस्य समझने का प्रयत्न करो। दूसरे के मन को भी सम्यक् प्रकार से समझने का प्रयत्न करो। तभी तुम्हें मालूम होगा कि उसने कौन-सा काम जानबूझकर किया और कौन-सा बग़ैर समझे-बूझे।

१३३. तुम्हारा हर एक कार्य दुनिया के लिए अनुकूल होना चाहिए। अपने जीवन को निरर्थक न होने दो। दुनिया के विरुद्ध चलकर विद्रोही जैसे मत बनो।

१३४. कोई तुम्हारी शिकायत करता है, दूसरा तुम से द्वेष करता है, कुछ लोग दुश्मन की तरह व्यवहार करते हैं। वे जो चाहें करें, सोचना तो यह है कि वे किस प्रकार के लोग हैं। वैसे लोगों के अभिप्राय की तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिए। उनसे घृणा मत करो। उन्हें भी अपना मित्र समझो।

यदि किसीको तुम सुधार नहीं सकते तो चिंतित क्यों होते हो? न उसपर क्रोध करो। परमात्मा ने तुम में दयाभाव दिया है। परमात्मा स्वयं कितना

दयालु है। दुर्जन को भी धन-संपत्ति, ख्याति और वल उसने दिया हे। उसी का तुम उदाहरण लो।

१३५. काल-चक्र निरन्तर घूमता रहता हे। जो नीचे रहता हे वह ऊपर को जाता है, और जो ऊपर रहता है वह नीचे आ जाता हे। सवकुछ इंश्वरीय शक्ति के आदेश से चलता है। जो नियम वन गया है उसके अनुसार ही यह चक्र चलता रहता हे। सभी घटनाएं एक-दूसरे से संवंध रखती हें। हर एक घटना से कोई-न-कोई लाभ होता ही है। ईश्वर नहीं है, सव-कुछ अपनेआप वन गया है, ऐसा भी तुम मान लो तो भी तुम्हें किसी-न-किसी प्रकार के नियम का पालन करना ही होगा। वेचैन होने की आवश्यकता नहीं। जगत् की सभी वस्तुएं अनित्य हें। शाश्वत यहां कुछ भी नही। इसे समझ लो तो अपने आप दुनिया की वस्तुओं पर से तुम्हारा अनुराग छूट जायगा।

१३६. वुरे काम का प्रभाव उसे करनेवाले पर ही पड़ता है। किन्तु हो सकता है कि वास्तव में उसका काम वुरा नहीं था।

१३७. मान लो कि तम नास्तिकवाद के पक्ष में हो। तुम्हें यह तो मानना ही पड़ेगा कि यहां की सभी वस्तुए नाशवान् हें। तव किस वात की चिन्ता करते हो? तुम भी तो अमर नहीं हो?

१३८. किसी ने यदि निर्लज्ज व्यवहार किया तो उसपर नाराज होना ठीक नहीं। ज़रा सोचो तो सही कि यह कभी हो सकता है कि दुनिया में ऐसा व्यक्ति एक भी न हो? यदि ऐसा होना असंभव है, तो फिर तुम एक असभव वस्तु की इच्छा करके दुःखी हो रहे हो। दुनिया में कुछ निर्लज्ज मनुष्य भी हैं। उनमें से बस वह भी एक है। कोई चोरी करता है, छल-कपट करता है, उसपर भी यही लागू होता है। तुम्हें यह मानना पड़ेगा कि संसार को सर्वथा दुष्ट-रहित नहीं बनाया जा सकता। यह बात तुम्हारी समझ में आ जाय तो कपटी और चोर पर भी तुम दया ही करोगे।

एक दूसरी भी बात है। सब बुराइयों की एकमात्र औषध तुम्हारा अपना सद्गुण है। जो द्वेष करे उससे प्रेम करना ही उसे सुधारने का मार्ग है। हर एक अवगुण गुण से सुधरता है। जिनसे भूल होती है वे दानव तो हैं नहीं। मानव अवश्य सुधर सकता है। रास्ता भूलनेवाले को सही रास्ता दिखाओ। उसकी ग़लती से तुम्हें कौन-सा नुक़सान पहुंचा? यदि तुम्हारा स्वभाव नहीं बिगड़ा, तो कुछ भी नहीं बिगड़ा। हानि और लाभ तो तुम्हारे मन की स्थितियां हैं। जो मूर्ख है वह अन्य प्रकार का बर्ताव कैसे कर सकता है? इसमें आश्चर्य की ऐसी बात

ही क्या है? इसे न समझकर उस बेचारे पर तुम व्यर्थ क्रोध कर रहे हो। तुम ग़लती कर रहे हो। तुम्हारे अच्छे काम के बदले यदि कोई तुम्हें कष्ट दे या तुम्हारा किया उपकार भूल जाय, तो अपने मन को टटोलो। उसके स्वभाव को जानते हुए तुम्हें कृतज्ञता की आशा नहीं करनी चाहिए। तुम अपने स्वभाव के अनुसार आचरण करते हो। उसका पारितोषिक क्यों चाहते हो? हाथ-पैर इत्यादि शरीर के अंग तुम्हारे लिए सतत काम करते रहते हैं। वे तुम से कौनसा पारितोषिक पाते हैं? अपना-अपना काम करके खामोश रह जाते हैं या नहीं? तब, तुम भी वैसे ही काम करते रहो। प्रतिफल की इच्छा मत करो।

१३९. रे मन! तू सपूर्ण आनन्द कब पायेगा? तुझे स्थितप्रज्ञता कब प्राप्त होगी? सर्वव्यापक प्रेम का अनुभव तुझे कब होगा? तू तृष्णारहित कब बनेगा? तेरी बन्धु-बान्धव और धनदौलत की चाह कब हटेगी? परमेश्वर की शक्ति को तू कब पहचानेगा?

१४०. अपराधी को प्रेम और स्नेह के साथ उसकी ग़लती समझाओ। उसके प्रति तुम सहिष्णुता दिखाओ।

१४१. दुनिया अपनेआप बनी हो या किसी महान् शक्ति द्वारा रची गई हो, मैं उसका एक अंश मात्र हूं। जिस संपूर्ण वस्तु का मैं एक भाग हूं उसके लिए जो

भला है वह मेरे लिए हानिकारक कैसे हो सकता है ? प्रकृति का हर एक काम दुनिया के लिए लाभदायक ही होता है, क्योंकि किसी भी वस्तु का छोटे-से-छोटा अंश भी निरुपयोगी नहीं हो सकता। इसलिए मुझे सदा संतुष्ट ही रहना चाहिए। किसी भी जीव को, और विशेषतः मनुष्य को, कभी में कष्ट न पहुंचाऊं। सब के क्षेम-कुशल पर ही मेरा ध्यान रहे। मेरे विचार लोगों की भलाई के लिए ही हों। मुझसे ऐसा कोई काम न बन पड़े जिससे जनता की सामूहिक एकता भंग हो। तभी मेरा जीवन खुश हो सकता है। राजशासन का अंगीकार करते हुए जो प्रजा के सुख को भी ध्यान में रखकर चलता है वही शासक सुखी है।

१४२. मकड़ी अपने जाल में मक्खी को फंसा लेती है, तो बहुत खुश होती है। मनुष्य एक खरगोश या छोटी-सी चिड़िया को पकड़ लेने पर बडा गर्व करता है। जंगली सुअर को मारकर शिकारी उसकी बड़ी-बड़ी बातें करता है। कुछ लोग दूसरे प्रदेशों के मनुष्यों पर अपना अधिकार जमाकर अपने को महान् पराक्रमी मानते हैं। सच्चे ज्ञानी की दृष्टि में ये सब एकसमान पाप हैं।

१४३. देनेवाला और लेनेवाला तो ईश्वर है। ज्ञानी मनुष्य राग-द्वेष छोड़कर ईश्वर से यही कहेगा

कि जो कुछ तू देना चाहता है वह दे और मुझ से जो लेना चाहता है ले ले। इस निवेदन में भी गर्व की भावना न हो। ईश्वर से तुम नम्रतापूर्वक अनुरोध करो।

१४४. नेक आदमी किस प्रकार का होता है और उसके क्या-क्या लक्षण हैं इसी बात को सोचते रहने के बदले तुम तो अपने-आपको नेक बनाने का प्रयत्न करो।

१४५. जो कुछ देता है ईश्वर किसी उद्देश्य से ही देता है। जिस समय जो होना उचित होता है वही होता है।

१४६. जो आदमी कानून के दण्ड से डरकर छिपा फिरता है वह आवारा होता है। वैसे ही, जो सांसारिक दुःखों से घबराता है, क्रोध के वश में आ जाता है, प्राप्त धन से तृप्त नहीं होता और जो अनुचित रूप से भयभीत रहता है वह मनुष्य अराजकीय होता है।

एकान्त में रहकर व्याकुलचित्त होना भी ठीक नहीं। ईश्वर के सभी कामों में न्याय देखने और उन्हें समझने की शक्ति मनुष्य रखता है। कोई बात तुम्हारी समझ में न आये तो भी ईश्वर की आज्ञा को चुपचाप स्वीकार कर लो।

१४७. किसी के अनुचित आचरण से तुम्हें क्यों क्रोध आता है? जरा सोचो तो सही, क्या तुमसे ऐसी

त्रुटि कभी नहीं हुई ? धन-दौलत और ख्याति को तुमने भी तो शाश्वत समझ रखा था ? उस बात को याद करो तो तम्हारा क्रोध अपनेआप उतर जायगा। फिर यह मालूम करो कि उसने ऐसा क्यों किया ? उसके स्वभाव को तुम बदल सको तो जरूर बदलने की कोशिश करो।

१४८. कर्त्तव्य-पालन करना तुम्हारे अपने अधीन है। क्या-क्या विघ्न आ सकते हैं, यह पहले ही सोचकर फिर काम शुरू करो। विघ्नों का बहाना बनाकर कर्त्तव्य-पालन से मत चूको। विघ्नों के अनुसार कार्य के रूप को बदल सकते हो।

सदा कर्तव्यों का पालन करने में ही तुम आनन्दित रहो। स्वधर्म का पालन सरल है। कल्याण भी उसी में है। अपने धर्म का पालन करने में तुम्हें उतनी ही आनुरता होनी चाहिए जितनी कि विषयी मनुष्य को वासनाओं के भोगने में होती है।

१४९. आत्मा स्वतंत्र है। शरीर के दुःखों का असर आत्मा पर कुछ भी नहीं पड़ता। तुम्हारे कामों मे जितने विघ्न आते हैं उतना ही तुम्हें उनसे अनुभव मिलता है।

१५०. जबतक कोई खास खराबी न आये, आंखों में सब कुछ देखने की शक्ति होती है। जब हरे रंग के सिवाय किसी और रंग की पहचान न हो, तब सम-

ञना चाहिए कि आंखों में अवश्य कोइ दोष है। शरीर के अन्य अंग भी जबतक स्वस्थ हैं अपने-अपने काम ठीक तरह से करते रहते हैं। कैसा भी भोजन हो, स्वस्थ पेट उसे पचा लेता है। कठिन पदार्थ को भी पीसकर जैसे चक्की बारीक आटा बना देती है वैसे ही पेट में पिसकर सब हज़म हो जाता है। अपने मन को भी इसी तरह बलिष्ठ बनाओ। तुम्हारे मन में व्याकुलता हो तो उसका अर्थ है कि तुम्हारा मन स्वस्थ नहीं, बीमार है। जैसे दुर्बल और रोगी दांत कठोर वस्तुओं को नहीं चबा सकते वैसे ही तुम्हारा रोगी मन दुःख या कष्ट को सहन नहीं कर सकता।

१५१. चाहे आदमी कितना ही अच्छा हो, गुणवान हो, जब वह मर जाता है तब कुछ लोग अवश्य प्रसन्न होते हैं। जब कोई गहरे विचारवाला ज्ञानवान व्यक्ति चल बसता है तब कोई-न-कोई ज़रूर सोचता है: चलो अच्छा हुआ; अब हम निश्चिन्त हुए। यह आदमी खुल्मखुल्ला तो हमारा विरोध नहीं करता था, लेकिन अंदर-अंदर हमें बहुत नीची निगाह से देखता था। जब सन्तों के मरने पर यह हाल हो, तो फिर मुझ जैसे पामर मनुष्य का तो हिसाब ही क्या? मेरे मरने पर तो कितने ही लोग ख़ुशी मनायेंगे। यह सोचकर भी प्रसन्नता के साथ अपने अंतकाल की प्रतीक्षा करो कि जिनके लिए मैं परिश्रम

करता था, चिन्ता करता था, देवी-देवताओं की पूजा करता था, वे भी अब मुझ से थक गये हैं। ऐसे जीवन से मरण ही उत्तम है ।

अपने जीवन से जब इस तरह थक जाओ, तब भी दूसरों से द्वेष न करो। उनके प्रति तुम्हारा व्यवहार प्रेमपूर्ण ही रहे । अपने कर्त्तव्यों को करते जाओ। मन में अच्छे विचार और शांति रखो ।

स्वस्थ शरीर से प्राण अनायास निकल जाता है। परिजनों और मित्रों पर से तुम्हारा मोह भी उसी तरह आसानी से छूट जाना चाहिए। जिस शक्ति ने तुम्हें उनके साथ मिलाया वही शक्ति अब तुम्हें उनसे अलग कर रही है। बड़ी घनिष्ठता से मिलना और फिर एकदम अपनेआप अलग हो जाना प्रकृति का स्वभाव है। देखो, पेड़ों पर से पत्ते किस तरह अपने आप झड़ जाते हैं ।

१५२. सूत्रधार तो हमारे अन्तर में है। बोलता वही है। वही प्राण है। शरीर ने तुम्हें ढक रखा है। शरीर अलग है, तुम अलग हो। शरीर के इन अंगों को, इन इंद्रियों को, आत्मा मत समझ बैठो। ये सब तो बढ़ई के औज़ारों के समान हैं। ये औज़ार शरीर के साथ लगे हुए हैं, बस, यही एक अन्तर है। इन सब साधनों को काम में लानेवाली आत्मा है। उसे भूलकर तुम औज़ारों को ही महत्व दे रहे हो। लकड़-

हारा कुल्हाड़ी से, लेखक क़लम से और गाड़ी चलाने वाला चाबुक से काम लेता है। इसी प्रकार शरीर और उसके ये अंग आत्मा के साधनमात्र हैं।

१५३. मनुष्य बुद्धिशील है। वह अपनी शक्ति को पहचानता है। वह अपने को चाहे जैसा बना सकता है। अन्य प्राणियों और वनस्पतियों की खूबियों का अनुभव दूसरे करते हैं, जबकि मनुष्य अपनी खूबियों का अनुभव खुद कर सकता है।

तमाशा या कोई खेल बीच में गड़बड़ी पड़ जाने से अधूरा रह जाता है, किन्तु मनुष्य के जीवनरूपी खेल के विषय में ऐसी बात नहीं। विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी अपने खेल को किसी-न-किसी तरह पूरा करने की शक्ति मनुष्य को प्राप्त है। उसे बुद्धि विशेष रूप से दी गई है। इसी से उस की श्रेणी ऊंची गिनी जाती है।

अपने बुद्धि-बल से मनुष्य सारी दुनिया को पहचानता है। अनन्त आकाश, काल और कल्प से भी वह अनभिज्ञ नहीं। भूत और भविष्य को भी वह जान सकता है। इसके अतिरिक्त बुद्धि की पहचान होती है आत्मज्ञान, विनय, सत्य, प्रेम और लोकहित के विरुद्ध न चलने में।

१५४. खेल, तमाशा, गाना ये सब मनोरंजन कुछ काम नहीं देते। इसके बिना शायद तुम्हें चैन न

पड़ता हो। इनके विषय में यदि अच्छी तरह विचार करो तो तुम्हें मालूम हो जायगा कि ये सब कैसी निकम्मी चीजें हैं। फिर अपनेआप तुम्हारी रुचि इनपर से हट जायगी। सद्‌गुणों के अतिरिक्त बाक़ी सब वस्तुओं को व्यर्थ समझो। उनपर तुम्हारा जो मोह है उसे दूर करो। विषय-वासना से बचने का भी यही उपाय है। जिन वस्तुओं की ओर तुम खिचे जा रहे हो उन्हें अच्छी तरह समझने का प्रयत्न करो। तभी तुम्हारी समझ में आयगा कि वे कैसी तुच्छ वस्तुएं हैं। तुम्हारा मोह तब अपनेआप दूर हो जायगा।

१५५. प्रसन्नता के साथ मृत्यु का स्वागत करने में ही आत्मा का गौरव है। जीवित रहने में और प्राण छोड़ने में कुछ भी अन्तर न देखो। ज्ञान से ही यह स्थिर बुद्धि प्राप्त हो सकती है। दूसरों को समझाते समय तुम्हारे अन्दर स्थिर बुद्धि होनी चाहिए। तभी वे तुम्हारा उदाहरण ले सकेंगे। जीवन से ऊबकर मरण की प्रतीक्षा न करो। आडंबरपूर्वक अपनी स्थिर बुद्धि का प्रदर्शन मत करो।

१५६. क्या किसीपर मैंने कोई उपकार किया है? किया हो तो उससे मुझे ही लाभ है।

१५७. पेड़ की किसी डाल को जब हम काट देते हैं तो वह पेड़ से अलग होकर गिर पड़ती है।

इसी प्रकार जब मनुष्य दूसरों से द्वेष करता है तब अपने को वह मूल वस्तु से अलग कर लेता है। डाल को तो कोई दूसरा काटकर गिराता है। किन्तु मनुष्य अज्ञानवश अपनेआपको स्वयं ही खण्डित करता है। इसमें एक अंतर है। कटी हुई डाल पेड़ से फिर जुड़ नहीं सकती, किन्तु मनुष्य फिर अपनेआपको दूसरों से जोड़ सकता है। यह जोड़ने की शक्ति उसे परमात्मा ने प्रदान की है। फिर भी वार-वार अपने को अलग न होने दो, नहीं तो जुड़ना कठिन हो जायगा। माली से पूछो तो वह वतायगा कि प्राकृतिक डाल और जोड़ी हुई डाल में अंतर होता है। दूसरों से मतभेद होने पर भी मिलकर रहना तुम्हारा कर्त्तव्य है।

१५८. कोई तुम्हें तंग करे तो अपनी वुद्धि को मत खो वैठो। अपने धर्म का पालन करने में चूको मत। तंग करनेवालों पर भी प्रेम-भाव रखो। उनपर कभी अप्रसन्नता या खीज न दिखाओ। जो काम हाथ में लो उसे अधूरा न छोड़ो। जो वाधाएं डालता है वह तुम्हारा वन्धु ही है। उसपर क्रोध कैसे कर सकते हो?

१५९. मान लो, तुम्हारी कोई निन्दा करता है। निन्दा से कुछ विगड़ता है तो उसी का विगड़ता है, तुम्हारा नहीं। अपनी वाणी या कार्य को निन्दा के

पड़ता हो। इनके विषय में यदि अच्छी तरह विचार करो तो तुम्हें मालूम हो जायगा कि ये सब कैसी निकम्मी चीजें हैं। फिर अपनेआप तुम्हारी रुचि इनपर से हट जायगी। सद्‌गुणों के अतिरिक्त बाक़ी सब वस्तुओं को व्यर्थ समझो। उनपर तुम्हारा जो मोह है उसे दूर करो। विषय-वासना से बचने का भी यही उपाय है। जिन वस्तुओं की ओर तुम खिचे जा रहे हो उन्हें अच्छी तरह समझने का प्रयत्न करो। तभी तुम्हारी समझ में आयगा कि वे कैसी तुच्छ वस्तुएं हैं। तुम्हारा मोह तब अपनेआप दूर हो जायगा।

१५५. प्रसन्नता के साथ मृत्यु का स्वागत करने में ही आत्मा का गौरव है। जीवित रहने में और प्राण छोड़ने में कुछ भी अन्तर न देखो। ज्ञान से ही यह स्थिर बुद्धि प्राप्त हो सकती है। दूसरों को समझाते समय तुम्हारे अन्दर स्थिर बुद्धि होनी चाहिए। तभी वे तुम्हारा उदाहरण ले सकेंगे। जीवन से ऊबकर मरण की प्रतीक्षा न करो। आडंबरपूर्वक अपनी स्थिर बुद्धि का प्रदर्शन मत करो।

१५६. क्या किसीपर मैंने कोई उपकार किया है? किया हो तो उससे मुझे ही लाभ है।

१५७. पेड़ की किसी डाल को जब हम काट देते हैं तो वह पेड़ से अलग होकर गिर पड़ती है।

इसी प्रकार जब मनुष्य दूसरों से द्वेष करता है तब अपने को वह मूल वस्तु से अलग कर लेता है। डाल को तो कोई दूसरा काटकर गिराता है। किन्तु मनुष्य अज्ञानवश अपनेआपको स्वयं ही खण्डित करता है। इसमें एक अंतर है। कटी हुई डाल पेड़ से फिर जुड़ नहीं सकती, किन्तु मनुष्य फिर अपनेआपको दूसरों से जोड़ सकता है। यह जोड़ने की शक्ति उसे परमात्मा ने प्रदान की है। फिर भी बार-बार अपने को अलग न होने दो, नहीं तो जुड़ना कठिन हो जायगा। माली से पूछो तो वह बतायगा कि प्राकृतिक डाल और जोड़ी हुई डाल में अंतर होता है। दूसरों से मतभेद होने पर भी मिलकर रहना तुम्हारा कर्त्तव्य है।

१५८. कोई तुम्हें तंग करे तो अपनी बुद्धि को मत खो बैठो। अपने धर्म का पालन करने में चूको मत। तंग करनेवालों पर भी प्रेम-भाव रखो। उनपर कभी अप्रसन्नता या खीज न दिखाओ। जो काम हाथ में लो उसे अधूरा न छोड़ो। जो बाधाएं डालता है वह तुम्हारा बन्धु ही है। उसपर क्रोध कैसे कर सकते हो?

१५९. मान लो, तुम्हारी कोई निन्दा करता है। निन्दा से कुछ बिगड़ता है तो उसी का बिगड़ता है, तुम्हारा नहीं। अपनी वाणी या कार्य को निन्दा के

योग्य मत बनाओ । कोई तुम्हारे साथ शत्रुता भी करे, तब भी तुम्हारा व्यवहार शत्रु के जैसा नहीं होना चाहिए। प्रेम से उसे समझाओ । समझाते समय उसकी त्रुटियों पर ज़ोर न दो। अपनी सहिष्णुता को भी बढ़ा-चढ़ाकर न दिखाओ । अपने हृदय की सद्भावनाओं से उस के मन का परिवर्त्तन करने का प्रयत्न करो । क्रोध को दूर कर, ईश्वर की साक्षी में, तुम अपने अन्तःकरण को शुद्ध रखो । अपने धर्म का ठीक तरह से पालन करते जाओगे तो कोई तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता ।

१६०. मन को स्थिर रखना तुम्हारे अपने अधीन है। सब बातों को अच्छी तरह समझने की कोशिश करो । बाह्य वस्तुओं से व्याकुल न होना, मन को अनासक्त रखना, चिन्ता न करना, यह सब तुम चाहो तो तुम्हारे लिए शक्य है। आत्मा को हानि न पहुंचे, तो चिन्ता क्यों ? मन को दृढ करने के लिए जो अवकाश तुम्हें मिला है वह स्वल्प है। इसलिए सचेत रहो। प्रकृति के स्वभाव के अनुसार जो घटना घटी हो, उससे दुःखी न बनो । कोई बात तुम्हारी इच्छानुसार नहीं हुई, तब भी अपने स्वधर्म से विचलित न हो ।

१६१. जब मन में क्रोध आये तब इन बातों को ध्यान में लाओ :

पहली वात—दूसरों के साथ तुम्हारा सम्बन्ध किस प्रकार का है? वे कौन हैं? दुनिया में एक-दूसरे की मदद करने के लिए ही तो हम लोग पैदा हुए हैं। जैसे गायों के झुंड के आगे सांड उन्हें चलाता हुआ जाता है, उसी प्रकार दूसरों को रास्ता वताते हुए आगे-आगे चलने के वदले उनपर तुम क्रोध क्यों करते हो? इस संसार की रचना कैसे हुई? परमेश्वर एक है या नहीं? छोटा प्राणी वड़े को और वड़ा प्राणी छोटे को सहायता पहुंचाये, इसीलिए वे पैदा हुए हैं।

दूसरी वात—जिनपर तुम नाराज़ हो रहे हो उनके स्वभाव को क्या तुम नहीं जानते? उनका खान-पान, रहन-सहन, उनकी अल्पवुद्धि सभी कुछ तो तुम जानते हो।

तीसरी वात—असल में उन्होंने जो किया वह उचित था या अनुचित? यदि उचित था, तो फिर क्रोध का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि अनुचित था, तो भी यह निश्चय है कि उन लोगों ने जान-बूझकर भूल की हो तो भी अनिच्छापूर्वक ही की होगी। इसलिए उन्हें तुम दोष नहीं दे सकते। जिन कारणों से वे ग़लती करने के लिए प्रेरित हुए वे कारण ही वास्तव में दोष के पात्र होने चाहिए।

चौथी बात—क्या तुम से कभी कोई ग़लती हुई ही नहीं ? हो सकता है कि तुम से कोई काम ग़लत न हुआ हो। लेकिन यह तुम दावा नहीं कर सकते कि तुम्हारे मन में ग़लत विचार भी कभी न आया हो। दूसरों की निंदा के डर के मारे, कायरता से या अन्य किसी कारण से अपने बुरे विचारों पर तुमने अमल नहीं किया तो इसमें कौन-सी बड़ी बात है ?

पांचवीं बात—तुम्हें कैसे मालूम कि उसने ग़लती की ? हर एक काम के अनेक कारण होते हैं। अच्छी तरह सोचे बिना हम किसी काम को ग़लत कैसे मान लें ?

छठी बात—जब क्रोध के आवेश में आकर तुम सहनशीलता खोने लगो, तो इस बात को सोचो कि मनुष्य की आयु स्वल्प है। कुछ दिनों बाद कोई भी रहनेवाला नहीं—न तुम, न वह जिसपर कि तुमने क्रोध किया है।

क्रोध करना पौरुष या वीरता का चिन्ह नहीं। मिठास के साथ बोलने में और सहन-शक्ति में ही बहादुरी है। जितना ही मन को स्थिर रखोगे उतना ही तुम में बल आयेगा। जो क्रोध को वश में नहीं रखता वह कायर और निर्बल होता है। वह अवश्य दुःख पाता है।

दूसरों पर क्रोध करना जितना बुरा है उतना ही बुरा झूठमूठ किसी की प्रशंसा करना भी है।

सातवीं बात—दूसरों के आचरण से वास्तव में तुम्हें दुखी होने की आवश्यकता नहीं। उनके बारे में तुमने जो विचार बना लिये हैं, वे विचार ही तुम्हें परेशान कर रहे हैं। इसलिए ऐसे विचारों को मन से निकाल देने का प्रयत्न करो। फिर न क्रोध के लिए स्थान रहेगा, न दूसरों के कार्यों के परिणाम से तुम्हें दु:ख ही होगा।

आठवीं बात—जिस वस्तु को तुम दु:खप्रद समझ रहे हो उससे कहीं अधिक हानि तुम्हें अपने क्रोध से पहुंच रही है।

नवीं बात—प्रेम में ही सफलता है। प्रेम अजेय है, यदि वह सच्चा हो। यदि तुम्हारा प्रेम केवल दिखावे का है, तो उसमें कोई ताकत नहीं हो सकती। तुम्हारे हृदय में कभी प्रेम का घाटा न हो। जब कभी मौक़ा मिले, मीठी वाणी से दूसरे को समझाओ, चाहे वह मनुष्य कितना ही अप्रिय कार्य क्यों न करता हो। समझाने में परिहास या कटुता न आने पाये। ऐसा आभास न हो कि प्रवचन कर रहे हो। इस ख़याल से उपदेश न दो कि लोग तुम्हारी बड़ाई करें। उसे अलग बुलाकर इस प्रकार बातें करो मानो तुम स्वयं अपने अन्त:करण से बात कर रहे हो।

ऊपर की इन नौ बातों को किसी देवता के दिये वरदान के समान समझो।

इस बात का तुम्हें ध्यान रहे कि मूर्ख लोगों से कुछ-न-कुछ गलतियां हो ही जाती हैं। उनसे बिल्कुल ठीक काम होने की आशा रखना पागलपन है। जब दूसरों के साथ उनका वर्ताव मूर्खतापूर्ण होता है तब तुम कुछ नहीं कहते, तो जब वे तुम्हारे साथ वैसा व्यवहार करते हैं तब तुम कैसे शिकायत कर सकते हो ?

१६२. जिनसे तुम्हारा शरीर बना है, उन वायु, अग्नि, अप्, पृथ्वी, आदि महाभूतों को देखो। वायु और अग्नि तत्त्व की गति का स्वभाव ऊपर की ओर चले जाने का है। शरीर में जो अप और पृथ्वी तत्त्व हैं वे बाद में उन्हीं दो तत्वों के साथ मिल जाते हैं। फिर भी, जबतक उनकी शरीर में रहने की अवधि पूरी नहीं हो जाती, वे शरीर के वन्धन से छूटते नहीं हैं। शरीर में रहकर सब अपने-अपने नियम से काम करते रहते हैं। फिर तुम्हारी बुद्धि चंचल होकर इधर-उधर क्यों भागती है ? अन्याय, अविनय, क्रोध और मानसिक अशांति ये सब अवांछनीय वस्तुएं हैं ईश्वरीय विधान के विरुद्ध हैं। सहिष्णुता, भक्ति और सत्य, ये सद्गुण आत्मा की उन्नति क लिए अनिवार्य हैं। तुममें ये गुण होने ही चाहिएं।

१६३. जबतक तुम्हें स्वयं लिखना-पढ़ना नहीं आता, तबतक दूसरों को तुम क्या सिखा सकते हो ? नेक जीवन के साथ भी यही न्याय है । लिखना-पढ़ना सिखाने की अपेक्षा सदाचार का पाठ पढ़ाना सरल नहीं । इसलिए तुम दूसरों को जब सुधारने लगो तो उससे पहले अपनेआपकी परीक्षा अच्छी तरह ले लो । अपनी भूलों को पहले भली भांति सुधार लो ।

१६४. दुःखी किसलिए हो ? तुम जो कुछ चाहते हो वह सब तुम्हें आसानी से मिल सकता है । जो बीत गया उसे भूल जाओ । भविष्य ईश्वर के हाथ में है, इसलिए उसकी भी चिन्ता छोड़ो । तुम तो बस वर्तमान की फिक्र करो । भक्ति, श्रद्धा और न्याय से पूर्ण जीवन व्यतीत करने का सतत प्रयत्न करो । जो कुछ भी तुम्हें मिले उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकारने को भक्ति कहते हैं । कभी किसी रूप में भी असत्य न बोलना ही न्याय है । धर्म से कदापि न डिगो । किसी दूसरे ने भूल की हो, या न कहने की बात कह डाली हो, अथवा कोई अनुचित काम किया हो, तब भी तुम अपने तरीके को न बदलो । कितना भी शारीरिक दुःख भोगना पड़े, तुम्हारे मन, वचन और कर्म सत्य तथा धर्म युक्त ही रहें । मृत्यु को समीप जानकर आत्मा की ओर ही ध्यान रखो, और चीजों की चिंता न करो । अधर्म से डरो, मरण से नहीं, तभी

तुम्हारा जन्म सार्थक होगा और तुम्हारा मन इधर-उधर न भटककर शांति प्राप्ति करेगा।

१६५. तुम्हारे मन के विचार परमात्मा से छिपे नहीं रह सकते। यदि तुम सच्चा ज्ञान लाभ करना चाहते हो, तो अन्तर्यामी परमेश्वर को देखने और समझने का प्रयत्न करो। शरीर को भूल जाओ। आत्मज्ञानी को धन-दौलत, कीर्त्ति और अधिकार की चिंता नहीं रहती।

१६६. कोई भी व्यर्थ काम मत करो। जिससे दूसरों को लाभ नहीं पहंचता, वह व्यर्थ ही है।

१६७. तुम्हारा जीवन-काल अब समाप्त होनेवाला है। तुम जो कुछ सामने देखते हो उसमें से एक भी वस्तु शाश्वत नहीं है। दुनिया की हर एक वस्तु का नाश अवश्यम्भावी है। जब एक वस्तु चली जाती है, तब उसकी जगह दूसरी की सृष्टि होती है।

१६८. जगत् में तुम जिस वस्तु का विचार करते हो वह उसी रूप में दिखाई देगी। विचारों का चुनाव करना यह तुम्हारे अपने ही हाथ में है। अतः मन को नियंत्रित रखकर तुम शान्ति-लाभ करो।

१६९. सुख और दुःख ये केवल मन के विचार हैं। याद रखो, हर एक व्यक्ति को सुख-दुःख दोनों भोगने पड़ते हैं। यह अनिवार्य है, कोई नई बात नहीं है।

तुम्हारा अपना कुछ नहीं होता । दारा, सुत, पुत्री और तुम्हारे अपने प्राण ये सब तुमको ईश्वर ने दिये हैं। सारी मानवजाति एक संयुक्त कुटुम्ब है । एक-दूसरे के साथ, शारीरिक सम्बन्ध न होते हुए भी, आत्मा का सम्बन्ध है । हम सब एक ही परमात्मा से उत्पन्न हुए हैं।

१७०. जो बीत गया उसके सम्बन्ध में मनुष्य कुछ नहीं कर सकता। भविष्य भी उसके हाथ में नहीं है । जो कुछ कर सकता है, वर्तमान काल में कर सकता है । किन्तु हाय ! वह उसे व्यर्थ जाने दे रहा है और जो उसके हाथ में नहीं है उसकी चिन्ता करता है ! कैसी मूर्खता है !

१७१. इतिहास को याद करो। कितने ही लोगों ने कैसी-कैसी विपदाएं झेलीं । और बहुतों ने बड़ा नाम कमाया। लेकिन आज वे सब कहां हैं ? उनकी बड़ाई और वीरता की कहानियां भी कुछ ही लोगों को याद हैं। व भी कुछ दिनों बाद भूल जायंगे।

१७२. व्यर्थ की चिन्ताएं छोड़ो। तुम तो परमेश्वर के दास बनो । विनय, न्याय और भक्ति से पूर्ण जीवन विताओ । गौरव इसी में है । अहंकार और दंभ को छोड़ो। अन्दर तो अहंकार हो और बाहर विनय, यह बहुत ही बुरा है।

१७३. तुम पूछ सकते हो कि सदा ईश्वर का नाम तो लेते हो, पर वह है कहां ? ईश्वर को हम ईश्वर के कामों में ही देख सकते हैं । क्या हमने कभी अपने प्राण को देखा है ? हम मान लेते हैं कि प्राण हैं और उसकी सेवा में सदा तत्पर रहते हैं। इसी प्रकार ईश्वर को मैं अपने अनुभवों से देखता हूं और उसकी उपासना करता हूं।

१७४. कार्य और कारण की जांच करो । न्याय और सत्य से न डिगो।

१७५. सूर्य का प्रकाश सब जगह फैलता है। पहाड़, बादल या दीवार आदि बीच में आ जाते हैं, तो भी प्रकाश तो सर्वत्र एक ही रहता है । इसी प्रकार प्रकृति की समस्त वस्तुएं और सर्व जीव भिन्न-भिन्न रूप धारण करते हुए भी एक ही सर्व-व्यापी परमात्मा के अभिन्न अंश हैं।

१७६. अनंत अनादि काल में से तुम्हें एक जरा-सा हिस्सा मिला है । एक विराट् ब्रह्मांड में जिस धरती पर तुम खड़े हो उसके मुकाबले में भी तुम्हारा शरीर कितना क्षुद्र है ? परमेश्वर की आज्ञा मानो। बाकी सब तुच्छ है।

१७७. अन्तःकरण को पवित्र रखो । उसी में तुम्हारा कल्याण है। शेष सभी वस्तुएं नश्वर हैं। उनका कोई भरोसा नहीं।

१७८. इस संसार से जब तुम्हारे लिए बुलावा आये, चाहे देरी से या जल्दी, बिना किसी शिकायत के जाने को तैयार हो जाओ। जिस शक्ति ने तुम्हें बनाया है वह कहती है, अब तुम्हारा काम समाप्त हुआ। नाटक के सूत्रधार को अधिकार है कि नटी को बीच खेल में से जब चाहे तब बुला ले। नटी शिकायत नहीं कर सकती। नाटक अधूरा रह जाय, तो भी सूत्रधार का निर्णय ही अन्तिम है। इसलिए चिन्ता छोड़ो। शांति रखो। ईश्वर तुम्हारा रक्षक है।